अर्थ दोहा—केवल धन चाहत अधम, मध्यम धन अरु मान। उत्तम चाहत मानहीं, सम्मुक्षि सिद्धिकी खान॥



* ओ३म्—खम्ब्रह्म *



यत्सेवयाशेष गुहाशयः स्वराट् ।
विप्र प्रियस्तुष्यति काममीश्वरः॥ } भागवत स्कंध ४ अ.२१ श्लोक ३९

अर्थ—ब्राह्मणों की सेवा = कुछ भेट करनेसे ईश्वर प्रसन्न होता है। इसलिये—

यह—

दानदर्पण ब्राह्मणार्पण

है.



तृतीय—भाग



जिसको

भोजन-विचार और भिक्षा-ग्राही-कुलीन-दर्पणके लेखक

दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी

कृष्णपुरी-निवासी

भूतपूर्व प्रधान ओल्ड आर्य्य समाज मथुरा

ने बनाया।

विक्रमी सम्वत १९[illegible]

श्रीमद्दयानन्दाब्द २६

प्रथमावृत्ति १००० प्रतियां } { मूल्य प्रति पुस्तक १४ आने और अंतिम पृष्ठ पर देखो

अधमा धन मिच्छन्ति धनं [illegible] मध्यमाः। उत्तमा मान मिच्छन्ति मानोहि महतां धनम्॥ चाण.नी.अ.८।१

बम्बई भूषण यंत्रालय मथुरामें छपा॥

* ओ३म्—खम्ब्रह्म *

॥ * ॥ ध—न्य—वा—द ॥ * ॥

१—सब से प्रथम मैं अजर, अमर, अभय, अजन्मा, अनादि, अनुपम, निराकार, निर्विकार, न्यायकारी, दयालु, नित्य पवित्र, परमात्मा को अनेकानेक धन्यवाद देता हूं कि जिसने मुझ को सर्व प्रकार का सुख दिया हुआ है॥

२—द्वितीय महर्षि दयानन्द को अनेक धन्यवाद देता हूं कि जिन के सत्योपदेशों ने मेरी मलीन बुद्धि को सुधारा और सत्य मार्ग पर चलना सिखाया ॥

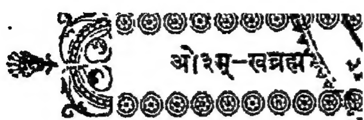
३—तृतीय श्री महा मान्यवर चतुर्वेदी पण्डित श्री केशवदेव जी महाराज सत्यधर्मोपदेशकको बहुत से धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने इस पुस्तकके रचने में मुझे बहुत कुछ सम्मति-सहायतादी॥

४—चतुर्थ उन कवीश्वरों को धन्यवाद देता हूं कि जिन्हों ने अपनी अपनी सुन्दर सुन्दर कवितायें भेजकर इस लघु पुस्तक की शोभा बढ़ाई ॥

५—पञ्चम अपनी श्रेष्ट—आर्य्या भार्य्या दयादेवी जी को धन्यवाद देता हूं कि जिन्हों ने इस पुस्तक के छपवाने का एक बड़ा भारी भार अपने सिर पर लिया अर्थात् जिन्हों ने इस पुस्तक के छपवाने के लिये प्रसन्नता पूर्वक निज धन दिया ॥

६—षष्टम् अपनी परम प्यारी—दुलारी पुत्रियों (चन्द्रवती और सूर्य्यवती) को आशीर्वाद देता हूं कि जिन्होंने इसके संशोधन में बड़ा भारी परिश्रम किया ॥ धन्यवाद देनेवाला—

दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा
दान-त्यागी
कृष्णपुरी-निवासी



❀ भूमिका ❀

अच्छे अच्छे शास्त्रों के देखने और सुननेसे भली भांति विदित होता है कि भिखारी को अपनी उदर दरी भरने के लिये अर्थात् पेट पूरना के निमित्त भीख मांगने के अतिरिक्त और कोई किसी प्रकारका कार्य्य दिखलाई नहीं देता। पर साथही इसके यहां यह एक प्रश्न उठता है कि भिक्षुक कहते किसको हैं? इसका उत्तर श्री मान्यवर पण्डित महा महोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी जी महाराज देते हैं—

वन्दिनो दानमिच्छन्ति भिक्षा मिच्छन्ति पङ्गवः।
इह सत्पुरषाः सिंहा अर्जयन्ति स्वपौरुषात् ॥

अर्थ—पङ्गवः अर्थात् लंगड़े, लूले, अन्धे, अनाथ, कोढ़ी, कुण्ठी आदि अङ्गहीन ही भिच्छाकी इच्छा करते हैं। तात्पर्य्य यहहै किजो धनसे हीन=दीनपुरुष अङ्गहीन होनेके कारण परिश्रम नहीं करसक्ते, उन्हीं को भिखारी कहते हैं। अच्छे जनतो सिंह समान अपने पुरुपार्थ से पैदा करते हैं॥

श्री अत्रि जी महाराज कहते हैं कि दान उस ब्राह्मण को देना चाहिये जो वेदको जानताहो, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें चतुरहो, माता पिताका भक्तहो, केवल ऋतुके समय मेंही स्त्री प्रसङ्ग करताहो, प्रातःकाल स्नान करताहो, अपने कल्याणकी इच्छा रखताहो और जिसका आचरण उत्तम हो। यथा—

ब्राह्मणे वेद विदुषि सर्व शास्त्रविशारदे।
मातृ पितृ परेचैव ऋतुकालाभिगामिनि॥१॥
शीलचारित्रसंपूर्णे प्रातःस्नान परायणे।
तस्यैवदीयते दानंयदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः॥२॥

अत्रि स्मृति श्लोक ३३६-३४०

परन्तु आजकल इसके विपरीत होरहा है अर्थात् असली अनाथ भिक्षुक तो रोटी के टुकड़े तक नहीं पाते हैं किन्तु नकली भिखारी, मिथ्या आचारी, अधर्म प्रचारी और तीर्थ यात्रियों के प्रहारी अर्थात् मूर्ख, अनपढ़े, हट्टे, कट्टे, मोटे, मुष्टण्डे, सण्डे, रण्डे, गुण्डे, लुण्डे, आलसी टट्टू रातदिन लड्डू और मालपूए उड़ाते रहते हैं और सिवाय सिरतोड़ भीख मांगने और दान लेनेके कोई दूसरा उद्यम नहीं करते॥

इसी महा अन्धेर को देखकर श्री मान्वर चौधरी नवलसिंह जी वर्म्मा मुजफ्फराबाद ज़िला सहारनपुर निवासी कहते हैं—

❋ लावनी ❋

कोढ़ी कङ्गले लङ्गड़े लूले एक टुकड़ा नहीं पातेहैं। भारत के अन्धे अनाथ सब पीस पीस मरजाते हैं ॥ ज़मींदार साहूकार सेठ यह जब कभी पोप जिमाते हैं। यज्ञ ज्योनारकी सुन पुकार यह अनाथ आंगन आते हैं॥ पोप करें उपदेश इन्हें मतदो कुपात्र ये कहलावे हैं। एक चौथाई भारत वासी भीख मांगकर खाते हैं॥

(देखो सभा प्रसन्न पन्ना ४३)

इसी प्रकार राय बहादुर श्रीमान् लाला बैजनाथ जी बी. ए. एफ. ए. यू. जज अदालत ख़फ़ीफ़ा इलाहाबाद कहतेहैं कि इस देशमें हररोज़ लाखों रुपयों का दान होता है परन्तु बहुतसा उसमें से दुराचारियों,

आलसियों और मूढ़ों की पुष्टि के हेतु जाता है विद्या वा धर्म्मकी वृद्धिमें (और असली अनाथों और दीनों=कङ्गालोंके पालन पोषणमें) बहुत कम खर्च किया जाताहै। गत कुम्भमें एक२ अखाड़े या मण्डली वालेको पंजाब वा और देशके एक २ गृहस्थने दस २ बीस २ हज़ार रुपये दे दिये और उन्होंने महीनों तक सैंकड़ों मनुष्यों को जो उनके मतके थे खूब माल खिलाये और आनन्द भोगा। इस दानसे कौनसे धर्म या विद्या की वृद्धि हुई? तीर्थों के पण्डे या गुसाईं और और ब्राह्मण जिनको दान खूब मिलता है बेचारे यात्रियों की मिहनतकी कमाई मद्यपान और वेश्याओं में प्रायः उड़ाते हैं। गया जी में एक गृहस्थ श्राद्ध करके पण्डाजी को दक्षिणा देने और सुफल बुलवाने को गए परन्तु पंडाजी की चेष्टासे मालूम होताथा कि रातभर किसी दुर्व्यसनको करके आएहैं। जगन्नाथपुरी में मन्दिरके बाहर एक स्थान है जिसको वैकुण्ठ कहते हैं। वहांपर वैकुण्ठ के तो कोई चिन्ह नहीहैं परन्तु बिचारे यात्रियोंकी तो खूब हजामत बनती हैं। वल्लभ कुलके गुसाईयों के आचार अदालतों तकमें प्रगट हुएहै। चौबे कहते हैं कि "औरों की विद्या और चौवोंकी महाविद्या,, जिसका अर्थ यहहै कि भांग पीना, लड्डू खाना और कुश्ती लड़ना और एक आदि बार किसी भूले भटके यात्री का माल लूटना और उसको कभी २ मार भी डालना। जब देशमें दान और दान लेनेवालों की यह व्यवस्था है तो यदि धर्म की हानि न हो तो और क्या होगा? (और यदि दीन-दुःखी और अनाथ हिन्दू रोटीके टुकड़ों के लिये भटकते२ परधर्म में न जा मिलें अर्थात् ईसाई और मुसलमान न हो जावें तो और क्या करें?)। इसका सुधार यही है कि पात्र कुपात्रका विचार करके दान दिया जाय [अर्थात् असली अनाथ भिखारियों और सुधर्मियोंको दिया जावे और नकली (पाखण्डी = कपटी) और रोज़गार करने वाले रोज़गारी

भिखारियों को न दिया जावे] और इस आग्रहको छोड़ दिया जाय कि जन्म से ब्राह्मण या काषाय धारण करने से साधु होता है बिना परीक्षा करे दान देने से कल्याण नहीं होता ॥ देखो धर्म विचार पन्ना ७५--७६

आनरेबिल राय श्री निहालचन्द्र जी बहादुर रईस मुज़फ्फ़रनगर कहते हैं कि धर्म्मशास्त्रानुसार चारों आश्रमों [ब्रह्मचर्य्य--गृहस्थ --वानप्रस्थ--संन्यास] में से ३ आश्रमों अर्थात् ब्रह्मचर्य्य, वानप्रस्थ, और संन्यास में अपना समस्त समय पठन पाठन आदि धर्म कर्म में लगाना पड़ता है। इतना अवकाश नहीं मिलता कि अपनी आजीविकाके वास्ते यत्न करे। इस कारण गृहस्थी को आज्ञा दीगई है कि तीनों आश्रम वालों के भोजन कपड़ेका प्रबन्ध करे। और धर्म शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि किस रीति से यह लोग भिक्षा लावें। परन्तु इस समय सबसे अच्छी मांगने की वृत्ति है न पढ़ना है, न पढ़ाना है, आराम से सोते हैं, नसा पीते हैं, अच्छे २ भोजन खाते हैं और अच्छे २ कपड़े पहरते हैं। और उनमें कोई २ खुल्लमखुल्ला रण्डी और औरतें अपने घर रखते हैं और इस ताक में रहते हैं कि स्त्री और बच्चों को बहका कर अपना चेला बनावें। इस कारणसे इस समय ६० लाख मांगने वाले फ़क़ीर = भिखारी हैं। इन लोगोंका हाल तीर्थों पर अच्छी तरह से मालूम होता है। इसके सिवाय जो "महन्त" लोग हैं हाथी, घोड़े और लाखों रुपये का राजस्वी असबाब रखते हैं। और गृहस्थियों के समान मुकद्दमे लड़ाते हैं, देव मन्दिर की जगह कचहरी में वकीलों की सेवा करते हैं और वेद श्रुतियों की जगह क़ानूनकी दफ़अ याद करते हैं। अब सोचना चाहिये कि ऐसे लोग दानपात्र हैं या नहीं ? इनलोगों को दान देने से क्या धर्म हो सक्ता है ? देखो दान प्रकाश पेज ७६—७७

उक्त आनरेबिल राय बहादुर जी यहभी कहते हैं कि तीर्थों पर जाकर तीर्थ पुरोहितको बहुत कुछ रुपया दान दिया जाता है। तीर्थों के पुरोहितको दान देने का अभिप्राय बहुत उत्तम था। वह यह था कि जो ब्राह्मण तीर्थों पर रहते थे विद्या पढ़ने पढ़ाने और तप करनेमें अपना सम्पूर्ण काल लगाते थे। उनके पालन पोषणके निमित्त यात्रीको आज्ञा थी कि केवल उन्हींको दान देवे। परन्तु अब ब्राह्मणों ने अपने कर्म छोड़ दिये विद्या पढ़ने का अवकाशही नहीं है। आठ वर्ष की उमूसे मांगना आरम्भ करते हैं। और दिन रात यही काम है [भीख मांगना]। और जब बिदून विद्याध्ययनके दान मिलताहै तो पढ़नेकी आवश्यकता ही क्या है? सचहै --

जिसके बीतें यों। वह काम करै क्यों॥

जब यजमान विद्या और कर्मोंका विचार छोड़कर दान देने लगे तो तीर्थ पुरोहित अनपढ़ होगये = रहगये॥

देखो दान प्रकाश पेज ७३--७४

नोट = क्या दान देने वाले दाता लोग राय बहादुर जी के इन वाक्यों पर ध्यान धरते हुए अबभी इन लोगोंको दान देनेसे न रुकैंगे?

❋ब्राह्मणों ने अपने कर्म छोड़ दिये❋

इस पर श्रीमान् पण्डित लक्ष्मणप्रसाद जी कहतेहैं—

ब्राह्मण ने संतोष छोड़ दिया बेसबरी पर धायाहै। दान कुदान न देखा कुछभी मिहतर तकका लायाहै॥ दस २ न्योते जीमें घर २ स्वान की तरह डुलाया है। दान धर्म में करे खुशामद जब गऊदान को पाया है॥ भजन पाठ और पूजा जपका नाम निशान उड़ाया है। वेद शास्त्र मर्याद छोड़के किस्सा मनमें भायाहै॥ संध्या और गायत्री तर्पण निज धर्म छुड़ायाहै। भूलगया सब वेद भेदको भीख मांगनं

क्षित लाया है ॥ दौलतवाला कोई जातहो उसे बनावेतायाहै । चूड़ी चमारिन धोबिन तेलिन सबको मात बनायाहै ॥ गऊको बेचदेय बूचड़को फिर क्या धर्म रहायाहै । हरिका मन्दिर घर करलीना गृहस्थीपन फैलाया है ॥ ब्रह्मतेजकूं गमाय बैठा यह अनर्थ कमाया है । निन्दा करवाई लोगों से पोप नाम धरवाया है ॥ घरकी नारी जहर बराबर पर त्रिय देख लुभायाहै । माल हाथ लगजाय गैरका ज़रा न मन पछितायाहै॥कभी पूजता सरी सीतला कभी जखई पुजायाहै । कभी पूजता चंडी भवानी कभी चौमुंडा पुजवाया है ॥ बराही पूजि ताज़िया पूजा सय्यद फिर पुजवाया है । धोबीपूजा पूजा धानुक फिर गधर्व पुजवाया है ॥ सबदिन भीख मांगताडोलै फिरभी सन्तोप न पाया है । बिना धर्मके सुनों जगतमें क्या अन्धेर समायाहै॥

श्रीमान् पण्डित भेदीरामजी कहते हैं——

ब्राह्मणोंने धर्म छोड़कर कार अनेक उठाये हैं सबसे खोटा कार दलाली वो पसन्द कर आये हैं ॥ झूठ सांचका ख्याल नहीं कुछ सेठों से बतराते हैं । झूंठ बोलकर धोखा देते गहरे माल बिकाते हैं ॥ कोई मुनीमी कर करके बनियों के माल उड़ाते हैं । जोर लिया धन चोरी छलसे सो बंढ़िया कहलाते हैं ॥ फिरभी दानरू भिक्षा लेनेसे ज़रा नहीं शरमाते हैं। ज़रा नहीं डर परमेश्वरका दहल न दिलमें खाते हैं ॥

श्रीमान् पं० श्यामजी शर्म्मा काव्य तीर्थ हेड पं० पुर्णीयां --बंगाल कहतेहैं---

नीच कर्म कर आप शूद्रको " राढ़ ,, बताते । सेवक विप्र न कभी ज़रासाभीशरमाते॥भीख मांगते गली२निजधर्म्म बिसारे । " यही विप्रका धर्म्म ,, लोक में घोप प्रचारे ॥ महा नीचके

पास खड़ेहो दांत खिसोरे। बार २ हैं मांगरहे दोनों कर जोरे ॥ "परमेश्वर हैं,, आप, धनी, मालिकहैं ज्ञानी। ब्राह्मण को कुछ दान दीजिये सुनकर बानी॥ सदा रहे कल्याण हूजिये भारी राजा। आशिर्वाद हमार हुआ सुनिये महाराजा॥

सुन सुन "राढ" महान विप्र को है दुरांता।
तो भी कलिका विप्र न कुछ भी है सकुचाता॥
आप धर्म्म को छोड़ किये कलिको बदनामा।
"धर्म्म हीन" नर होय कहो कैसे सुख धामा॥

देखो आर्य्यावर्त्त वर्ष १९ अङ्क ५ पेज ७ कालम १

श्री मान् ठाकुर विक्रमसिंह जी गौड़ वर्म्मा ग्राम वनकोटा पोस्ट वज़ीरगंज ज़िला वदायूं निवासी कहते हैं —

॥ मुक्त हरा छन्द सवैया ॥१॥

करावत कौन द्वै तीनक मुद्रा मासिक पै सब को जलपान।
करै अब कौन रसोई के काम को को सब जातिसे लेतहै दान॥
फिरे अब कौन विदेशमें जाचत छांड़ि त्रिया घर बाल अयान।
कहै कवि विक्रम ऐसी दशा में भई चहुं ओर रिषी सन्तान॥

॥ छप्पय ॥२॥

जिनके पूर्वज भये चतुरवेदी रिषि पण्डित।
जिन के पूर्वज भए सकल दर्शन से मण्डित॥
जिन के पूर्वज भये सर्व विद्या के दिन कर।
जिन के पूर्वज भये तपी योगी ज्ञानाकर॥
ताजि तिनकी सन्तति वेद पथ सबको जाचै दीन वनि।
कवि विक्रम इन पेटार्थिन मान प्रतिष्ठा दई हनि॥

॥ छप्पय ॥ ३ ॥

कोई वशिष्ठ कुल जन्म कोई पारासर वंशी।

कोई कश्यप कुल जात कोई भृगुवंश प्रसंशी ॥
भरद्वाज कुल कोई कोई गौतम परिवारी ।
कोई मरीचि के वंश कोई नारद कुल धारी ॥
अगस्तादि रिषि वंश जिन जन्म लियो पूर्व सुकृत ।
कविविक्रम तिननाजि लाज को करि राखोहैं श्रीखरहत ॥

श्री मान् कविवर बलदेवसिंह जी वर्म्मा ग्राम मकरन्दपुर जिला मैनपुरी निवासी कहते हैं—

॥ कवित्त ॥

वेद खुद पढ़े ना पढ़ें हो कहा औरन को सन्ध्या गायत्री फेरि गीखे औ सिखाये को । भैंस के समान काले अक्षर को समुझि रहे बात बलदेव तुम्हें यज्ञ की बताये को ॥ देवे के नाम घर में दीवा हू जरायो नाहिं लेवे में न छोड़ो धन धुनाओ जुकाहे को । विप्रन के कर्म धर्म सारे ही छोड़ बैठे व्हैके नादान दान मांगत फिर काहे को ॥ १ ॥

जप तप यम नियम ध्यान धारण समाधि आदि त्यागि बैठे स्वाध्याय झंझट त्रिसाहे को। शम दम सन्तोष शील सत्य को असत्य जानि त्यागि दियो कर्म धर्म बन्धन में आये को ॥ बुद्धि बलदेव भंग पी पी के बिगारि बैठे टपकि पड़े लार माल देखि के पराये को। विप्रन के कर्म तुमने सारे ही बिसारि दिये व्है के नादान दान मांगत फिर काहे को ॥ २ ॥

जिन के पुरुषान की प्रशंसा देश देशन में विद्या बुद्धि सत्य ता मही में विख्यात है। बड़े २ तत्व दरशी ब्राह्मण थे भारत में जिन के रचे शास्त्र देखि दुनियां चकरात है ॥ विद्या फैलाई जिन सारे भूमण्डल में मनुष्यनि देखो मित्र मिथ्या नहीं बात है। शोक बलदेव आज उनकी सन्तान भई ऐसी नादान दान मांगि २ खात है ॥ ३ ॥

जिन के तप तेज औ प्रताप पुरुषारथ की सारे संसार में पताका फहरा गई। ऐसे ऐसे त्यागी जिन सम्पति संसार हू की सन्मुख जो आई लात मारि के हटा दई॥ बड़े २ चक्रवर्ती चरण पलोटें नित्य मानी वही बात जो उन स्वप्न में बता दई। शोक बलदेव आज उन की सन्तान निज पूर्वजों की शान दान ले ले के गंवा दई॥ ४॥

सम्पति सुमेर औ कुबेर हू की देखि जिन्हे स्वप्न हू में नाहि आनि लोभ ने डिगायो है। इन्द्रिय आदि भोगन में रोग जानि लात मारी केवल जिन्हों ने ध्यान ब्रह्म में लगायो है॥ कीन्हो बलदेव सत्य विद्या को प्रचार द्वीप द्वीपन में डंका वेद धर्म को बजायो है। तिन के सन्तान ऐसे निपट नादान मांगे दर २ दान मान आपनो घटायो है॥ ५॥

॥ ग़ज़ल ॥

दान लेना ही रोज़गार बनाया तुमने।
फ़र्ज़ अपना जोथा बिल्कुलही भुलाया तुमने॥
पढ़ाना वेदों को चाहिये था फैलाना नेकी।
बजुज़ उसके कुफ़्र दुनियां फैलाया तुमने॥
मुल्क भारत को किया तुम्ही ने ग़ारत विप्रो।
दान के लोभ में निज धर्म भुलाया तुमने॥
टके के वास्ते दे दे के व्यवस्था झूठी।
छुरा इंसाफ की गर्दन पै चलाया तुमने॥
पाप कितने ही करे तुम को खिलादे कोई।
उसी को स्वर्ग का हक़दार बनाया तुमने॥
वेश्या गामी हो चाहे कोई शराबी होवे।
टका ले उसको पुन्यवान बताया तुमने॥

बेचे कन्या को कोई तुम को दक्षिणा देकर ।
उसे भी पाप के फन्देसे छुड़ाया तुमने ॥
ठगों चोरों औ हिंसकों में भी हिस्सा लेते ।
दान ले ले के अपना धर्म नसाया तुमने ॥
हो गये बलदेव तुम बरबाद ब्राह्मणो बिल्कुल ।
मुफ्त खोरी से मगर दिल न हटाया तुमने ॥ ६ ॥

श्रीमान् पण्डित रामस्वरूप जी पाठक कहते हैं—

॥ घनाक्षरी छन्द ॥

तेज हानि मान हानि बुद्धि हानि शील हानि, धर्म्म हानि कर्म्म हानि क्यों है ? विप्र वर्न की । काम बढ़ो क्रोध बढ़ो लोभ बढ़ो मोह बढ़ो, कहां हैं ? पुरानी इनकी कुटी फूल पर्न की ॥ प्रेम मन्द प्रीति मन्द शौर्य्य मन्द धैर्य्य मन्द, चाल मन्द ढाल मन्द क्यों है ? पूज्य चर्न की । पाठक कह हाय अब तो दान ग्राहि अधिक भये, मायादै ये दानवाले चमकते सुवर्न की ॥ १ ॥

श्रीमान् ठाकुर गिरवरसिंह जी वर्म्मा रईस सावितगढ़ पोस्ट पहासू जिला बुलन्दशहर कहते हैं—

॥ कवित्त ॥

वेदन के प्रचारी बने जन्म के भिखारी औ अतिदुराचारी करी जगत में ख्वारी है । लोक लज्जा गमाय भिक्षा मांगे अघाय और पत्थर पुजाय ईश्वर भक्ति बिसारी है ॥ तीरथ बताय के डुबावत हैं औरन को आपुन हू डूबत हैं गई मति मारी है । विद्या से विहीन अब भए धर्म हीन तुम सोचो मन माहिं कैसी दुर्गति तिहारी है ॥ १ ॥

श्रीमान् पण्डित जीवानन्द जी शर्म्मा काव्य तीर्थ अध्यापक श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय व सम्पादक वैश्योपकारक मासिक

पत्र—कलकत्ता अपनी बनाई हुई पुस्तक नाम ब्राह्मणोत्तेजना में लिख—दरशाते हैं। कि—

॥ रौला—छन्द ॥

कहा रहे द्विज वंश काह अब भये पिआरे।
करम फेर सों हाय सबै सुधि बुधि हारे॥
वेद छूटि व्रत छूटि छूटि गे कर्म्म तिहारे।
घर घर मांगत भीख गुलामी करत सुधारे॥
वह गौरव वह तेज कहां वह मान बड़ाई।
मिटत मिटत मिट गई भाव की सुन्दरताई॥
जिन देखत छन माहिं पाप सब दूर पराते।
सो अब कारज क्रूर करत हिय शरम न लाते॥
जिन भृकुटी कों देखि रहे नृप कांपत थर थर।
सो अब खाते लात फिरत चिट्ठी लै घर घर॥
लात खात हू शक्ति रही नहिं बोलन केरी।
कलपि कलपि मरि जात पाइ आपत्ति घनेरी॥

इसलिये—

उठहु उठहु द्विज देव लखहु निज देश दशा को।
तजहु आलसी मौज छांड़ि यह विषय नशा को॥

हे द्विजदेव ! अब दुःख असह्य हो गया। बहुत दिनों से दुःख सहते सहते जी ऊब उठा। प्रियबन्धु ! बहुत सो चुके अब नींद का अवसर नहीं रहा। यदि थोड़े दिन भी और हम ऐसे ही मौजमें झूमते रहे तो अब जो तड़फ २ कर मर जाना शेष रह गया है वह भी पूरा हो जावेगा। देखो ! आंख पसार कर देखो ! हमारी और हमारी सन्तानों की क्या कुदशा हो रही है ! ब्राह्मण देवता ! कुछ भी तो आगे पीछे सोचो। थोड़ी देर एकान्त में बैठो और अपने पुरुषों की बात सोच २

कर आज कल की अपनी दशा से मिलाओ। देखो कितना अन्तर पड़ता है। मैं तो समझता हूं, कि यदि हम इसी सिलसिले से बराबर नीचे उतरते गये तो थोड़े दिनों में बचे बचाये साधारण समाज भी पूरी घृणा करने लगेंगे। खयाल रहे। कहना अतिशयोक्ति न होगा। मत्सरता तुम्हारे ही घर में अधिक डेरा जमाये बैठी है। लालच तुम्हारा ही अधिक प्यारा बना हुआ है। महामहोपाध्याय कहा कर भी तुम्ही ईर्षा द्वेष से अधिक भर जाते हो। कहो अब आप कैसे सुधरोगे? और अपनी सन्तान को कैसे सुधारोगे? तुम को तो सभा में केवल दक्षिणा मिलनी चाहिये। ब्राह्मण समाज कैसा है? अर्थात् जीता है या मरता है इस बात से आप को क्या प्रयोजन? कहने से तो आप चिढ़ोगे, भला बताओ तो....

ब्राह्मणो ब्राह्मणंदृष्ट्वा श्वन्वद्वै घुर्घुरायते ॥

अर्थात् ब्राह्मण ब्राह्मण को देखकर कुत्ते के जैसे गुर्राने लगते हैं। यह किसके लिये कहा जाता है? तुमारेही लिये न। तो तुम्हीं न बिचारो। क्या यह बात झूठ है? एक दूसरेको देखकर नहीं जलमरते हो देवताजी! अब वह दिन नहीं हैं, कि "पढ़े लिखे नहीं हैं तो ब्राह्मण तो हैं" ऐसा कहकर अकड़ते चलेंगे। प्यारे ब्राह्मणो! तनक सोचो तो सही कि तुम्हारी कैसी दुर्दशा हो रही है? हाय! एक दिन वह था, कि विष्णु को भी लात मारने का साहस किया था और अब एक दिन ऐसा भी आ गया, कि तुम [ब्राह्मण देवता जी] आप लात खाते हो और चूं भी नहीं कर सक्ते हो। एक दिन वह भी था, कि तुम्हारे पहुंचते ही बड़े २ सामन्त सिंहासन छोड़ कर तुम्हारे पावों पर आ-गिरते थे और अब एक दिन यहभी है, कि नीचसे नीच लोगोंके पांव पर तुम खुद गिरते फिरते हो तथापि पेट नहीं भरता। [दो चार के लिये यह बात न हो पर दश में-आठ-ऐसी ही दशा के मिलेंगे] ॥

श्रीमान् वर पण्डित श्याम विहारी मिश्र एम.ए. डेपुटी कलेक्टर--युक्त

प्रदेश और श्री मानवर पण्डित शुकदेव विहारी मिश्र बी. ए. वकील हाई कोर्ट लखनौ कहते हैं। कि—हम ब्राह्मणों ने अब अपना कर्त्तव्य पालन करना छोड़दिया जिस से हमें [ब्राह्मणों को] दान देना दो हानियां पहुंचाता है एक तो उतना धन वृथा नष्ट होता है और दूसरे हम [ब्राह्मण] लोग आलसी होकर परिश्रम शून्य हो जाते हैं। देखे उक्त महाशयों की बनाई हुई पुस्तक नाम 'व्यय' पृष्ठ १५ पंक्ति ७ ॥

आगे चलकर उक्त दोनों महाशयजी फिर कहते हैं। कि-इस में सन्देह नहीं कि हम वही हैं जो एक समय समस्त पृथ्वी तलपर अद्वितीय थे। पर इस समय हम [ब्राह्मण] प्रायः सभी जातियों से निकृष्टतर हैं। और अब हम=ब्राह्मण लोग वही हैं जिन्हे आस्ट्रेलिया एवं विमर्दित-साउथ-अफ्रीका निवासी कुलियों तक में भरती करना नहीं चाहते।

देखो 'व्यय' पृ० १७ पं० २९

इससे भी आगे कुछ और बढ़कर उक्त महाशयों ने यह भी कहा है। कि—वर्त्तमान काल के दान लैने वाले ब्राह्मण भूदेव के पद गिर कर पशु की पदवी को प्राप्त होगये हैं।

देखो 'व्यय' पृ० ३४ पं० ११

श्रीशिवजी महाराज अध्यात्मरामायण में कहते हैं कि ब्राह्मण अपनी जातिका कर्म्म छोड़कर दूसरों को ठगने = भीख मांगनेमें तत्पर रहते हैं। यथा—

त्यक्त स्वजाति कर्माणः प्रायशः परवंचकाः ॥

देखो स्वार्थान्ध प्रकाशिका पेज २४

वर्त्तमान दान के महान अन्धेर को देखकर जैसे राय बहादुर श्री मान् लाला बैजनाथ जी बी.ए- और आनरेविल राय श्री निहालचन्द्र जी बहादुर रईस मुजफ्फरनगर ने अपने बिचार ऊपर गद्य में प्रगट किये हैं वैसे ही श्रीमान् पर बाबू भगवानदीन जी [दीन] प्रधान

सभा "काव्यलता सभा" छत्रपुर-बुंदेलखण्ड व सम्पादक "लक्ष्मी" मासिक पत्र गया-विहार यहां अपने विचारों को पद्य में प्रगट करते हैं—

इस देश के पंडे व बरहमन व मठाधीश ।
आलस्य के अगुवा हैं व आराम के अवनीश ॥
बनते हैं महा मान्य बड़े धर्म के आधीश ।
पर अस्लमें लोभीश हैं क्रोधीश हैं कामीश ॥
हम सब को नहीं कहते मगर हैं अधिक ऐसे ।
बद कामोंमें व्यय करते हैं सब पुन्यके पैसे ॥ १ ॥
इन से कोई पूंछे कि य धन तुमने जो पाया ।
क्या आपने मेहनत से है कुछ इस को कमाया ॥
निज धर्म की उन्नति के लिये सबने जुटाया ।
क्या सोच के तब आप ने बेकार उड़ाया ॥
उस धन से तुम्हें धर्म का कुछ काम था करना ।
जिससे कि न होता तुम्हें बदनामी से मरना ॥ २ ॥
कुछ खा के अधिक धर्म के कामों में लगाते ।
इस प्लेग निवारण के लिये यज्ञ कराते ॥
कुछ भूखों को वे धर्म ही होने से बचाते ।
अज्ञान को कर दूर उन्हें ज्ञान सिखाते ॥
तब हम भी तुम्हे जानते हौ धर्म्म के आधीश ।
कैसे न कहैं तुम को भला स्वारथी कामीश ॥ ३ ॥
गैयों के लिये सोचते रक्षा की कोई बात ।
गोशाल ही बनवा के रखाते उन्हें दिन रात ॥
भूखों को चबाने ही की दिखलाते करामात ॥
उपदेश ही देते कि करौ ढङ्ग से खैरात ॥
उपदेश जो देते हैं तो बस यह कि करौ दान ।

उड़वाओ महंतों को मठाधीशों को पकवान ॥४॥
इन बातों से महाराज जी नाराज़ न होना ।
दें दोष किसे खोटा हो अपना ही जो सोना ॥
तुम चाहते हो इस हिन्द की नैया को डुबोना ।
हम झूठ जो कहते हों तो इन्साफ करो ना ॥
पुरुषा थे कभी आप के इस हिन्द के रक्षक ।
अब आप तो हैं सिर्फ दही पेड़ों के भक्षक ॥ ५ ॥
विश्वास है जब आप कमर कस के डटेंगे ।
और हिन्द की उन्नति से न खुद आप नटेंगे ॥
इक दम में सकल देश के सब दुःख कटेंगे ।
हम लोग भी निज धर्म से हर्गिज़ न हटेंगे ॥
तब हिन्द भी समझेगा तुम्हें धर्म का आधीश ।
आदरके सहित रक्खेगा चरणों में सदा शीश ६ ॥

देखो "लक्ष्मी" मासिक पत्रिका वर्ष ५ अङ्क १ पृ० ४-५

असली भिखारियों के भाग [हक़] को नक़ली भिखारी तो लेते ही थे किन्तु अब लोभी धनाढ्य, जिनको रोज़गारी--भिखारी कहना चाहिये, भी लेने लगे । इससे जान पड़ता है, कि अब भारतवर्ष में अनाथों का कहीं भी पता न लगेगा = चलेगा ॥

प्र०—भाई ! यह रोज़गारी क्या रोजगार किया करते हैं ?

उ०—महाराज ! यह रोज़गारी दुनियां भर के सबही रोज़गार किया करते हैं अर्थात् ज़मींदारी, दुकानदारी, ठेकेदारी, साहूकारी, चित्रकारी, रजिस्ट्रारी, मुनीमगीरी, सिपहगीरी, मुख्तारगीरी, खवास-गीरी, कुलीगीरी, महन्तगीरी, डिप्टीगीरी; तहसीलदारी, थानेदारी, चोबदारी, जमादारी, फौजदारी, दलालगीरी, वैद्यगीरी; खुशामदगीरी, बाबूगीरी, मुनशीगीरी, चपरासगीरी, चुगलखोरी, गवाहखोरी, हलाल खोरी, हरामखोरी, पण्डिताई, पुरोहिताई, किसानी, पहलवानी, हुन्डी

लिखनी और न शिकारनी, पटवाज़ी, नेजवाज़ी, छट्टवाज़ी, मुक्कावाज़ी, अदालत, वकालत, नौकरी, चाकरी इत्यादि ऊंच से ऊंच और नीच नीच इनमें से कोई २ गाय का गोबर, दूध, दही, मठा [छाछ] घी; और उपला भी बेचा करते हैं ॥

प्र०—भाई ! यह लोग इतने धनवान् होते हुए और दुनियां भर के सब रोजगार [उद्यम] करते हुए फिर भीख और दान क्यों लेते हैं ?

उ०—महाराज ! लोभ के वशीभूत होकर अपस्वार्थ के कारण॥

प्र०—अरे भाई ! क्या यह लोग भीख और दान लेने में कुछ दोष नहीं समझते ?

उ०—महाराज क्या आप नहीं जानते ? कि अपस्वार्थी लोग कभी किसी बात में [चाहे जैसी बुरीही क्यों न हो] दोष नहीं समझते । यथा--

स्वार्थी दोषो न पश्यति ॥

प्र०--क्या ये लोग दीनों की दीन पुकार पर भी ध्यान नहीं देते !

॥ अनाथ—पुकार ॥

॥ सवैया ॥

नाथ अनाथ हजारनहीं दिन रात घने दुःख पाइ रहे हैं।
मात पितासे बिहीन भये अब शोक ग्रसे घबराइ रहेहैं ॥
भोजन वस्त्र बिना वपु सूखि प्रसून समान झुराइ रहे है।
दीनदयाल सहाय करौ चित्त आपकी ओर लगाइ रहेहैं॥

उ०--नहीं महाराज ! यह लोग दीन दुखियोंकी दुर्दशा का कुछ भी बिचार नहीं बिचारते और न उनकी चिल्लाहट परही ध्यान देते हैं कारण इनका हृदय बड़ा बज्र होता है ॥

प्र०—क्यों भाई ! क्या यह लोग यहभी नहीं जानते ? कि दान लैने से ब्रह्म तेज नष्ट होताहै और भिक्षा ग्रहण [मांगन] से मान जाताहै ॥

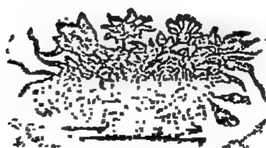
उ०—स्यात इन बातों [दोषों] को यह लोग न जानते हों, क्यों कि इन अपस्वार्थी जनों की आंखों पर अब सदा लोभ का पर्दा पड़ा रहता है ॥

प्र०—अच्छा भाई! तो तुम अब इन लोगों को "दान और भिक्षा ग्रहण" की कुछ बुराइयां [निन्दा] सुनाओ, जिनको सुन कर स्यात यह लोग "दान और भिक्षा लैना" छोड़ दें ॥

उ०—बहुत अच्छा महाराज! लीजिये! आपकी आज्ञानुसार इन रोज़गारी-भिखारियों के लिये मैं--"दान और भीख लैने" की बुराई पर एक छोटीसी पुस्तक ही लिख देता हूं, जिस को यह लोग [रोज़गारी—भिखारी] स्वयं [ख़ुद] पढ़लिया करेंगे ॥

॥ इति भूमिका ॥

स्थान मथुरा मिती संवत् श्री मद्दयानन्दाब्द २५ का प्रथम दिवस	हस्ताक्षर दामोदर—प्रसाद—शर्म्मा दान—त्यागी कृष्णपुरी—निवासी



ओ३म्-ख़म्अल

॥ समर्पण ॥

समस्त रोज़गारी-भिखारी ब्राह्मणों की सेवामें

हे मेरे प्यारे निरोगी काया रख कर रोज़गार (उद्यम) करते हुए भी दान लेने और भीख मांगने वाले ब्राह्मण भाइयो ! नमस्ते ।

मैं आज इस **दानदर्पण** नामी लघु पुस्तक को आपके अर्पण करताहूं और निश्चय रखता हूं कि आप सब सज्जन मेरी इस तुच्छ समर्पित भेटको प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करेंगे और आगेको असली अनाथ=दीन-दुःखी भिखारियोंके हक़को तनदुरुस्त नक़ली भिखारियोंके सदृश न लेकर पुण्यके भागी और स्वदेश के शुभचिन्तक बनेंगे ॥

आपका

स्वदेश हितैषी

दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा

दान-त्यागी

नोट—रोज़गारी-भिखारी ब्राह्मण वह ब्राह्मण कहलाते हैं, जो बनज-व्योपार और मुनीमी आदि नौकरी--चाकरी करते हुए भी दान--पुण्य, दैनी--दक्षिणा और भूर--भीख के माल को, जो कि दीन--दुःखी, विद्वान ब्राह्मण और श्रेष्ठ सन्यासियों का हक़ होता है, गुप--चुप और दुबके--छुपके लेते रहते हैं ॥

ओ३म्–खम्ब्रह्म

मंगलाचरणम्

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥

❀ व्याख्या ❀

जो परमात्मा, सबका आत्मा, सत्‌चित् आनन्द स्वरूप, अनन्त अज, न्यायकारी, निर्मल, सदापवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्टदेव है, वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महा कठिन कामभी हम लोग सहजसे करने को समर्थ हों। हे कृपानिधे! यह काम हमारा आपही सिद्ध करने वालेहो हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे॥

॥ दोहा ॥

सर्व काल ज्ञाता परम, स्वामि सकल संसार ।
जो स्वरूप आनन्द को, वेदन कह्यो पुकार ॥
मोक्ष और व्यवहार सुख, भाषो जो दातार ।
ताहि जेष्ठ खम्ब्रह्म को, नमामि वारम्वार ॥
ब्रह्मा शेष से थकि रहे, वेद न पावत पार ।
पार कौन तुमरो लहे, महिमा अमित अपार ॥

सकल चराचर विश्व जो , प्रभु पालत उपजाय ।
नीति बढ़ाय अनीति हनि , सो मम करें सहाय ॥

॥ सवैया ॥

दुर्लभ देह मनुष्य दई बुधि ता विच चातुरताइ समोई ।
ता निरवाहन हेतु अनेक प्रकार धरा विच अन्न रचोई ॥
पंच प्रकार कि तत्व रच्यौ तन में जग में उपकारक जोई ।
को बरनै महिमा तिनकी सतिदास प्रणाम करें धनि सोई ॥

॥ भजन ॥

तू निराकार अकाल है , तू न्यायकारी दयाल है ।
तेरी न कोई मिसाल है , अनन्त अलख ओंकार है ॥
तेरा न कोई तोल है , लम्बा न चौड़ा गोल है ।
तेरी अजब एक डौल है , अनन्त० ॥
नहीं रूप रङ्ग रस गन्ध है , नहीं नाड़ी नसका बन्ध है ।
तू सत्य चित् आनन्द है , अनन्त० ॥
तू अचल और अकूट है , तू अखण्ड और अटूट है ।
एक सम नहीं कहीं फूट है , अनन्त० ॥
काला पीला न लाल है , नर नारि वृद्ध न बाल है ।
एक रस तू तीनों काल है , अनन्त० ॥
सारा तेरा ही स्थान है , तू ज्ञान का भी ज्ञान है ।
तू प्राण का भी प्राण है , अनन्त० ॥
इतना बड़ा आकाश है , उसका भी तुझमें वास है ।
सब में तेरा ही प्रकाश है , अनन्त० ॥
तू मुक्ति और विज्ञान है , तेरे न कोई समान है ।
तूही सर्व शक्तिमान है , अनन्त० ॥
कारण जगत तेरे हाथ है , यह अनादि भी साथ है ।

एक तूही सब का नाथ है, अनन्त० ॥
जितना भी यह संसार है, तेरेही सब आधार है।
तू सबका रचने हार है, अनन्त० ॥
नहीं आप देह धरता है तू, नहीं जन्मता मरता है तूं।
नहीं दुःख में पड़ता है तू, अनन्त० ॥
जग रचता वारम्बार तू, करता है फिर संहार तू।
रखता यही व्यवहार तू, अनन्त० ॥
करता है पर उपकार तू, देता कर्म्मानु सार तू।
देखे है सब का कार तू, अनन्त० ॥
नहीं पापियों को तारता, नहीं धर्मियों को मारता।
नहीं नियम अपना टारता, अनन्त० ॥
जो युक्ति और प्रमाण से, सब कुछ यथार्थहि ज्ञान से।
सब तृप्त हों तेरे ध्यान से, अनन्त० ॥
योगी जो दर्शियों द्वारको, देखे हैं तत्त्व के भार को।
तरजाय वह संसार को, अनन्त० ॥
जो कोई न तुझको जानता, आज्ञा न तेरी मानता।
वह मुफ्त मिट्टी छानता, अनन्त० ॥
इस नवलसिंह के मनलगी, तेरी रहे नित्य धुन लगी।
बुद्धि रहे नित्य जगमगी, अनन्त अलख ओंकार है ॥

॥ छन्द ॥

निराकार निरवयव हे निर्विकारी। परब्रह्म रक्षा करोतुम हमारी
तुम्हें सच्चिदानन्दअखिलेश स्वामी। नमामीनमामी नमामी नमामी।

॥ भुजंग प्रयात छन्द ॥

अखण्डं चिदानन्द देवाधि देवं, मुनीन्द्रादि रुद्रादि इन्द्रादि सेवं
मुनीन्द्रादि इन्द्रादि चन्द्रादि मित्रं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं ।

२

धरात्वं जलाग्नी मरुत्वं नभस्त्वं, घटस्त्वं पटस्त्वं अणुस्त्वं महत्वं।
मनस्त्वं वचस्त्वं दृशस्त्वं श्रुतस्त्वं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते समस्तं॥

३

अडोलं अतोलं अमोलं अमानं, अदेहं अछेहं अनेहं निदानं।
अजापं अथापं अपापं अतापं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमापं॥

४

न ग्रामं न धामं न शीतं न उष्णं, न रक्तं न पीतं न श्वेतं नकृष्णं।
न शेषं अशेषं न रेखं न रूपं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं॥

५

न छाया नमाया न देशो नकालो, न जाग्र न स्वप्नं न वृद्धो नबालो
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्यं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं॥

६

न बन्धं न मुक्तं न मौनं न वक्त्रं, न धूम्रं न तेजो न यामी ननक्तं।
न युक्तं अयुक्तं न रक्तं विरक्तं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्तं॥

७

न रुष्टं न तुष्टं न इष्टं अनिष्टं, न ज्येष्ठं कनिष्ठं न मिष्टं अमिष्टं।
न अग्रं न पृष्ठं न तुल्यं न गुष्टं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अधिष्टं॥

८

न वक्त्रं न घ्राणं न करणं न अक्षं, न हस्तं न पादं न शीशं नलक्षं।
कथं सुन्दरं सुन्दरं नाम ध्येयं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते ऽप्रमेयं॥

॥ दोहा ॥

परमेश्वर जगदीश हरि, दयासिन्धु भगवान।
नारायण परमातमा, न्याया धीश समान॥
निर्मल शुद्ध अकाम अज, अविनाशी योगीस।
सबमें है सबसे रहित, ताहि नवाऊं सीस॥

ओ३म्-खम्ब्रह्म

॥*॥ धन्यवाद ॥*॥

हे मेरी परम प्रिय पूजनीय माता श्री मती गंगादेवी जी महाशया !

मैं आपको अनेकानेक धन्यवाद देता हूं। आपने मेरा पालन--पोषण और लाड़--चाव करते हुए मुझको विद्याध्ययन कराया और दान और भिक्षा न लैने का लाभ बताया। और और भी अनेक उत्तमोत्तम शिक्षायें दीं बस उन्हीं आपकी दी हुई दीक्षाओं का यह प्रभाव है कि मैं आज दान और भिक्षा ग्रहण के निषेध पर इस पुस्तक के बनाने को उपस्थित हूं॥

आपका सच्चा भक्त
दामोदर

सूचना—

प्रिय पाठको !

स्मरण रखना, इस पुस्तक में मैंने अपनी कोई सम्मति प्रघट नहीं की। केवल वेद, शास्त्र, उपनिषद, स्मृति, पुराण, इतिहास, विद्वान मनुष्य, और अच्छे अच्छे कवियों की अनुमति का सारांश प्रकाश किया है। हां यदि कुछ समय मिला तो द्वितीय भाग में मैं भी अपने विचार आपको लिख सुनाऊंगा॥

दामोदर--प्रसाद--शर्म्मा--दान--त्यागी

विशेष सूचना—

दान और भिक्षा के लैने और मांगने वालो !

जब तक आप इस पुस्तक को आद्योपांत न पढ़ लैं तब तक आप न नाक सिकोड़ना, न भौं चढ़ाना, न होठ पड़पड़ाना; न माथे पर त्रिवली डालना, न क्रोधित होना और नहीं मुझपर दोषारोपण करना॥

दामोदर--प्रसाद--शर्म्मा--दान--त्यागी--मथुरा.

॥ ओ३म्--खम्ब्रह्म ॥

※ पुस्तक के बनाने का कारण ※

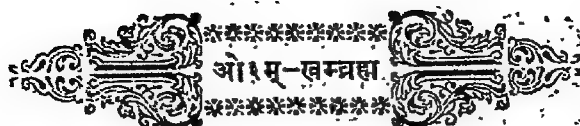
परमात्मा को धन्यवाद देने के बाद इस पुस्तक के पढ़ने वालों को इसके रचने का हेतु भी लिख सुनाता हूं ॥

सन् १९०१ ई० के आरम्भ में मैं पञ्जाब से जब यहां (मथुरा) आया तो देखा कि श्री मान्नवर कुलीन चौबे श्री गोपाल जी महाराज, जो कि श्री किशोरी रमण ठाकुरजी की कोठी के मुख्य मुनीम हैं, दान -पुन्य और भीख--भूरसी के माल [रुपये--मोहर, पाई--पैसे, चून--चावर, घी--खिचड़ी, नोन- तेल, तिल--जौ, गुड़--खांड, कपड़े--लत्ते, बर-तन--भांड़े, सुई--डोरा, सुरमा--बिन्दी, चूड़ी- कंघी, दुपट्टा--अंगिया, खाट--पीढ़ी, तोसक--तकिया, आदि पदार्थ] को, जो कि देनी--दक्षिणा के नाम से यमुनाके पुत्रों को बटता है, चुप-चाप, गुपचुप और लुक छिप कर लेलेते हैं ॥

श्री—जी महाराज के इस अनुचित कार्य्य को देख कर मैं ने उनसे (श्री सीगोपाल जी से) प्रार्थना की कि महाराज! आप ऐसे प्रतिष्ठित और धनवान् होकर ऐसे निषिद्ध = वर्जित पदार्थों को न लिया करें। इस पर आप क्रोधांध होकर बोले कि " वाह, ऐसे माल को लेवो तो हम कबू नांय छोड़ेंगे जो बिन हाथ पांय चलाये घर बैठे सेंत मेंत में मिलै है। अरे भैया! हम तौ ऐसे लेवेकों अच्छो समझें हैं। और जो तू जाकों बुरो बतावै है तो कछू परमान दे। कोरी बकबक सों काम नांय चलै" ॥

बस इन्हीं प्रमाणों के देने का कारण इस पुस्तक के बनाने का कारण है ॥

दामोदर--प्रसाद- शर्म्मा--दान--त्यागी।



दानदर्पण

तृतिय--भाग

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ दान और भिक्षा (ग्रहण) निषेध के विषय में ॥

हे प्रिय मित्रवरो ! यदि आप वेदादि शास्त्रों को श्रवण करें—संसार के इतिहासों को देखें—ऋषि और मुनियों के जीवन चरित्र पढ़ें और विद्वान मनुष्यों के वाक्यों पर ध्यान देवें तो आप लोगों को भली भांति विदित हो जाइगा कि दान लेने और भिक्षा मांगने से उत्तमोत्तम मनुष्यों के भी तप, तेज, प्रताप, बल, प्रभाव, मान, सन्मान, अभिमान, आदर, सत्कार, प्रतिष्ठा, बड़ाई और गौरव आदि नष्ट होजाते हैं ॥

देखिये ! यजुर्वेद अ० ४० मं० १ में लिखा है कि इस जगत्

में ईश्वर सर्वत्र व्यापक है । हे मनुष्य ! परमात्मा से जो दीया गया है उसी का तू भोग कर (भिक्षा व चोरी आदि अन्याय से) किसी के धन को मत ग्रहण कर । भावार्थ यह कि पुरुषार्थ से धनोपार्जन कर न कि भीख से । यथा—

ईशा वास्य मिद ँ सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

शतपथ ब्राह्मण का० ११ प्र० १ अ० ३ में कहा है कि जो जन अपने तईं को दीन दरिद्री बनाकर निर्लज्जता से भिक्षा मांगता है उसका पैर मौतके मुंह में है अर्थात् भीख मांगने वाला मरा हुआ है । यथा—

अथ यदात्मानं दरिद्री कृत्यैव अह्री भूत्वा ।
भिक्षते य एवास्य मृत्यैः पादस्त मेव परिक्रीणाति॥

मनुस्मृति अ० ४ श्लो० १८६ में लिखा है कि दान लेने में समर्थ हो तो भी दान न लेवे दान लेने से ब्रह्म तेज नष्ट होताहै । यथा—

प्रतिग्रह समर्थोऽपि प्रसंगन्तत्र वर्जयेत् ।
प्रतिग्रहेणह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति ॥

मनु महाराजने तो दान न लेनेके विषयमें यहां तक कहा है कि भूख से पीड़ित दुःखित रहता हुआ भी विद्वान् ब्राह्मण दान कदापि न लेवे अर्थात् ब्राह्मणको उचित है कि भूखके दुःख को तो सहन कर लेवे किन्तु दान कदापि न लेवे । यथा—

प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नापि क्षुधा ॥

क्योंकि दान लेना एक निन्दित, नीच, तुच्छ, हलका, खराब अर्थात् बहुत ही बहुत बुरा काम है । यथा—

प्रतिग्रहः प्रत्यवरः ॥

वा

प्रापणात्सर्वं कामानां परित्यागो विशिष्यते ॥

श्री भर्तृहरि जी महाराज कहतेहैं । कि—

रेरे चातक सावधान मनसा मित्र क्षणं श्रूयताम ,
म्भोदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेऽपि नैता दृशाः ।
केचिद्वृष्टि भिरार्द्र यन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथागं,
यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रुहि दीनं वचः ॥

नीति शतक श्लोक ५१

॥ अर्थ=कुण्डलिया ॥

चातक सुन मेरे वचन सावधान मन होय ।
मेघ बहुत आकाश में प्रकृति जुदी पन जोय ॥
प्रकृति जुदी पन जोय कोय बरसें महि भारी ।
कोई बूंद न देहीं गरज कर उपल महारी ॥
ताही सों मैं कहत लेय मत यह सिर पातक ।
देखि जोही मेघ ताहि मत मांगे चातक ॥

नोट=अरे मंगतो ! क्या इस वाक्य को सुनकर भी हरएक को बाबा--दादा कहते हुए मांगते ही रहोगे ॥

आगे चलकर महाराज पुनः भिक्षा ग्रहण निषेध पर कहतेहैं कि गङ्गा की तरंगो के ठण्डे जल कणों से जो शीतल होरहे हैं और जहां विद्याधर ठौर ठौर पर बैठे हैं ऐसे हिमालय पर्वत के स्थानों का क्या लोप होगया है ? जो अपमान सहन करके भी मनुष्य पराये दियेहुए अन्न से रुचि करतेहैं अर्थात् भीख मांगते हैं । यथा—

गङ्गा तरंग हिम शीकर शीतलानि

विद्याधरा ध्युषित चारु शिलातलानि ।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि ,
यत्सापमान पर पिण्डरता मनुष्याः ॥
वैराग्य शतक श्लोक १६

॥ अर्थ—दोहा ॥

गंगा तट गिरिवर गुफा, उहां कहा नहिं ठौर ।
क्यों ऐसे अपमान सों, खात पराये कौर ॥

नोट -अरे भिक्षुको ! क्यों अब भी भिक्षा वृत्ति को त्याग संतोश ग्रहण न करोगे ?

श्री अत्रि मुनिजी महाराज कहते हैं कि प्रतिग्रह लेने से उत्तम से उत्तम ब्राह्मण भी ऐसे नष्ट होजाता हैं जैसे जलसे अग्नि । यथा —

प्रतिग्रहेण नश्यंति वारिणा इव पावकः ॥

श्री विष्णुजी कहते हैं कि आत्मा को जानता हुआ किसी से प्रतिग्रह (दान) न लेवे । यथा—

प्रतिग्रहं न गृहणी यात्परेषां किंचिदात्मवान् ॥

बस इसी प्रकार सब वेद—शास्त्र—पुराण—स्मृति और पृथ्वी के सारे देशों और मतों के इतिहासों में " दान और भिक्षा (ग्रहण) का निषेध' लिखा हुआ पाया जाता है ॥

॥भिक्षुक निन्दाके विषयमें संस्कृत विद्वानों की॥

॥ सम्मतियां ॥

वेपथुर्मलिनं वक्त्रं दीना वाग्गद्गदः स्वरः ।
मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥१॥
गतेर्भङ्गः स्वरो हीनो गात्रे स्वेदो महद्भयम् ।
मरणे यानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥२॥

दीना दीन मुखैः सदैव शिशुकै राकृष्टजीर्णाम्बरा,
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद् गेहिनी ।
याच्ञा भंगभये न गद्गदगल त्रुट्य द्विलीनाक्षरं ;
को देहीति वदेत्स्वदग्ध जठर स्यार्थे मनस्वी जनः॥३॥

अर्थ—कम्प, मलिन मुख, दीन वाणी, और गद्गद स्वर ये जितने चिन्ह मरण समय में होते हैं, वही सब चिन्ह मांगने वाले में पाये जाते हैं ॥१॥ गतिभंग, हीनस्वर, शरीर में पसीना और बड़ा डर, ये जितने चिन्ह मरण समय में होते हैं, वही सब चिन्ह मांगने वाले में पाये जाते हैं ॥२॥ भूखे और रोते हुए दीन मुख बालक जिसका फटा और पुराना वस्त्र खींच रहे हैं, ऐसी दीन स्त्री यदि देख न पड़े तो कौन लज्जावान् अपने जले हुए पेटके लिये, प्रार्थना स्वीकार हो वा न हो, इस भय से, गिड़ गिड़ाता हुआ टूटे अक्षरों में "कुछ दीजिये' ऐसा वाक्य कहे ॥३॥

क्वगन्तासि भ्रातः! कृतवसतयो यत्र धनिनः ;
किमर्थं प्राणानां स्थिति मनु विधातुं कथमपि ।
धनैर्याच्ञा लब्धैर्ननु परिभवोऽभ्यर्थ न फलं ;
निकारोऽग्रे पश्चाद्धनमदह भोस्तद्धि निधनम् ॥४॥
तावत्सर्व गुणालयः पटुमतिः साधुः सतां वल्लभः,
शूरः सच्चरितः कलंक रहितो मानी कृतज्ञः कवि ।
दक्षोधर्मरतः सुशीलगुण वांस्तावत्प्रतिष्ठान्वितो ,
यावन्निष्ठुर वज्रपात सदृशं देहीति नो भाषते ॥५॥
कायं जीर्ण पलाश संहति कृतां कन्थां दधानो वने,
कुर्यामम्बुभिरप्ययाचित सुखैःप्राणानुबन्धस्थितिम् ।
सांगग्लानि सवेपितं सचकितं सान्तर्निदाघज्वरं ;
वक्तुं न त्वहमुत्सहे सकृपणं देहीति दीनं वचः ।६।

अर्थ—हे भ्राता ! कहां जाता है ? जहां धनी लोग निवास करते हैं वहां । क्यों ? किसी प्रकार प्राण रक्षा विधानके लिये । कैसे उन प्राणों की रक्षा होगी ? याचना लब्ध धनों से । क्यों जी मांगने का फल तिरस्कार है, क्या उसको नहीं सोचते ? जिसके आगे नकार और पश्चात् धन प्राप्ति है, अहह ! भो ! वह निश्चित " निधन " मरण ही है ॥४॥ तब तक वह सम्पूर्ण गुणों का घर है, चतुर बुद्धि है, साधु है, श्रेष्ट पुरुषों का प्यारा है, शूरवीर है, श्रेष्ठ चरित वालाहै कलंक रहित है, मानी है, कृतज्ञ है; कवि है, दक्ष है, धर्म में प्रीति वाला है, सुन्दर स्वभाव और गुण वाला है, तभी तक प्रतिष्ठा युक्तहै, जब तक कठोर वज्रपात सदृश " देहि " इस दीन वचन को नहीं बोलता ॥ ५ ॥ जीर्ण ढाक के पत्तों की संहति से बनाई कन्था को धारण करके यथेच्छ वन में रह सकते हैं और अयाचित सुख जलों को ही पीकर प्राणों की रक्षा कर सकते हैं परन्तु अंगों में ग्लानि कराने वाले कंपकपी कराने वाले सकुचित शरीर के अन्दर पसीना और ज्वर उत्पन्न कराने वाले कृपणता युक्त "देहि" इस दीन वचन के कहने को हम उद्यत नहीं हैं ॥ ६ ॥

तृणादपि लघुस्तूल स्तूलादपि हि याचकः ।
वायुना किं ननीतोऽसौ मामयं प्रार्थयिष्यति ॥७॥

अर्थ—कहागया है कि तिनके से हलका रुई का फोआ होता है किन्तु भिक्षुक रुई के फोआ से भी हलका गिना जाता है। जब याचक इतना हलका होता है तो वायु उसको [याचक को] क्यों नहीं उड़ा ले जाता ? इस लिये नहीं, कि वह (पवन) डरता है कि कहीं याचक मुझसे (पवन से) भी न मांग उठे अर्थात् याचक की याचना से पवन भी डरता है ॥ ७ ॥

देहीति वचनं श्रुत्वा देहस्थाः पञ्च देवताः ।
मुखान्निर्गत्य गच्छन्ति श्री ह्री धी धृति कीर्तयः॥८॥

अर्थ—देहि (तू दे) इस प्रकार सुनते ही देह में रहने वाले श्री (लक्ष्मी या शोभा) ह्री (लज्जा) धी (बुद्धि) धृति (धीरज) और कीर्ति (प्रशंसा) ये पांचों ही देवता मुख द्वारा निकल कर बाहर चले जाते हैं अर्थात् " तू दे " ऐसा शब्द कहते ही भिक्षुक उक्त पांचों गुणों के रहित रह जाता है ॥ ८ ॥

तावन्महतां महती यावत् किमपि हि न याच्यते लोकम् ।
बलिमनु याचन समये श्रीपतिरपि वामनो जातः ॥ ९ ॥

अर्थ—बड़ों का बड़प्पन तब ही तक रहता है जब तक कि वह किसी से याचना नहीं करते । देखो ! लक्ष्मीपति (विष्णु) भी राजा बलि से मांगते ही वामन (बौना अर्थात् ओछे = हलके) हो गये ॥ ९ ॥

अग्रे लघिमा पश्चान महतापि पिधीयते नहि महिम्ना ।
वामन इति त्रिविक्र ममभि दधति दशावतारविदः ॥ १० ॥

अर्थ— पहिले जो याचना करनेसे हलकापन होजाता है फिर वह बड़े २ काम करने पर भी नहीं टलता । जैसे कि विष्णु भगवान याचना के कारण बलि राजा के यहां वामन (छोटे) हुऐ । पुनःइस छोटेपन को त्रिविक्रम [एक २ चरण कर तीन चरण (पैंड़) से तीनों लोकों के नापने वाले] होने पर भी दूर न कर सके वरन दशावतार जानने वाले उन को वामन इस नाम से ही पुकारते हैं ॥१०॥

याचना हि पुरुष स्य महत्वं नाशयत्य खिलमेव तथा हि ।
सद्य एव भगवानपि विष्णुर्वामनो भवति याचितु मिच्छन्॥११॥

अर्थ—याचना ही पुरुष के सब महत्व = बड़प्पन को नष्ट कर

देता है। भगवान विष्णु को भी मांगने की इच्छा करते ही वामन (बौना) होना पड़ा ॥ १२ ॥ हाय भिक्षा तेरा नाश हो ॥

नीचता मनवलम्ब्य जनः को याचना दवाप्नोति फलानि ।
हन्त वामन पदं प्रतिपेदे भिक्षुतामुपगतो जगदीशः ॥ १२ ॥

अर्थ= कौन जन बिना नीचता किये भिक्षा से फल प्राप्त करता है। साथ दुःख के कहना पड़ता है कि जगदीश्वर को भी भिक्षुकता करने पर वामन पद (बौने का खिताब) लेना पड़ा था॥१२॥ ॥ अरे भिक्षको ! क्या अब भी न सोचोगे ?

अन्य तो यदि निजोपचिकीर्षा मानहानिरिति भीतिर नीतिः ।
श्री धरोऽपि हि बलेः श्रियमिच्छन्मानमातनुत वामनमेव॥१३॥

अर्थ=यदि कोई किसी से भिक्षा मांग कर अपने तईं कुछ लाभ लब्धि करता है तो उस मांगने वाले को मानहान अवश्य सहनी पड़ती है। देखिये ! लक्ष्मीपति = विष्णु को भी बलि से राज्य चाहने पर वामन होने से मानहान उठानी पड़ी ॥ १३ ॥

अदृष्ट मुख भंगस्य युक्त मन्धस्य याचितुम् ।
अहो बत महत्कष्टं चक्षुष्मानपि याचते ॥ १४ ॥

अर्थ=कथञ्चित् अन्धे पुरुष का याचन कर्म युक्त सा प्रतीत होता है क्योंकि वह दाता का मुख भंग [भौं चढ़ाना] नहीं देखता है परन्तु बड़े दुःख और आश्चर्य की बात है कि बड़ी सी आंख वाला भी मांग रहा है ॥ १४ ॥ अरे, दोनों नेत्र रखते हुए मांगने वालो ! क्या इस वाक्य को सुनकर भी लज्जित न होगे ?

दारिद्र्यानल संतापः शान्तः संतोष वारिणा ।
याचकाशा विघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥ १५ ॥

अर्थ=दरिद्रता रूपी आग की भभक सन्तोष रूपी जलसे शान्त होसक्ती है किन्तु भिक्षुक के मनोरथ पूरे न होनेसे उसका अन्तर्दाह

किस प्रकार दूर हो सो नहीं जाना जाता। अर्थात् अबतक श्वान समान याचक की तृष्णा के बुझानेका कोई उपायही दिखलाई नहीं दिया। सारांश यहहै कि याचक की तृष्णा कभी मिटती ही नहीं॥१५॥

तीक्ष्ण धारेण खड्गेन वरं जिह्वा द्विधा कृता।
न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम्॥१६॥

अर्थ—तीक्ष्ण = पैनी धार वाले खड्ग से जिह्वाको छेदन कर डालना अच्छा है किन्तु मान त्याग कर देहि. देहि = (देउ. देउ) ऐसा कहना अच्छा नहीं अर्थात् भीख मांगना ठीक नहीं वरं मृत्यु प्राप्ति करना श्रेष्ट है॥१६॥

एकेन तिष्ठता धस्तादन्येनोपरि तिष्ठता।
दातृ याचक योर्भेदः कराभ्यामेव सूचितः॥१७॥

अर्थ—याचक और दाता का भेद उनके लेते देते समय हातों ने ही प्रघट करदीया है जो कि एक [याचक का हाथ] नीचे रहता है. और दूसरा [दाता का हात] ऊपर रहता है॥१७॥

सेवेवं मानमखिलं ज्योत्स्नेव तमो जरेव लावण्यम्।
हरिहर कथेव दुरितं गुणशतमप्यर्थिता हरित॥१८॥

अर्थ—चाकरी सम्पूर्ण मान को, चान्दनी अन्धकार को, बुढ़ापा सुन्दरता को, और विष्णू और महादेव जी की कथा पापों को जैसे दूर करती है वैसे ही याचकता सैकड़ों गुणों का नाश कर देती है॥१८॥ हाय याचकता बड़ी बुरी बला है॥

कतरत्पुरहर परुषं हलाहल कवल याचना वचसोः।
एकैव तव रसज्ञा तदुभयरसतारतम्यज्ञा॥१९॥

अर्थ—हे शम्भो ! हलाहल = महा विष का घूंट और याचना वचन इन दोनों में कौन वस्तु कड़वा है। क्योंकि एक आपही की जिह्वा उन दोनों के रस की अधिकता व न्यूनता को जानती है॥१९॥ भावार्थ यह है कि मनुष्य को उचित है कि हलाहल तो प्रसन्नता पूर्वक पीवै किन्तु याचना कदापि किसी से न करे अर्थात् महा विष पीकर मरजाना तो अच्छा परन्तु भीख मांगकर उदर दरी को भरना अच्छा नहीं॥

गुरुतामुपयातियन्मृतः पुरुषस्तद्विदितं मयाधुना ।
ननु लाघव हेतुरर्थिता न मृते तिष्ठति सा मनागपि ॥२०॥

अर्थ—मरा हुआ (मुरदा) क्यों भारी हो जाया करता है ? इसका कारण मुझे अभी मालूम हुआ है कि लाघव (हलकापन) का हेतु एक याचकता हुआ करती है वह याचकता मरने पर नहीं रहती ॥ २० ॥ भावार्थ = भीख मांगने वाले के समान इस संसार में और कोई दूसरा पदार्थ हलका = तुच्छ नहीं है अर्थात् भिखारी ही सारे संसार में तुच्छ = नाचा है ॥ इसी से भीख मांगना ठीक नहीं ॥

पङ्गो वन्द्यस्त्वमसि न गृहं यासि योऽर्थी परेषां; धन्यो ऽन्ध त्वं धन मदवतां नेक्षसे यन्मुखानि। श्लाघ्यो मूक त्वमपि कृपणं स्तौषि नार्थाशया यः; स्तोतव्य त्वं वधिर न गिरं यः खलानां शृणोषि ॥ २१ ॥

अर्थ—हे पङ्गो (चरण हीन) तू प्रणाम के योग्य है क्योंकि तू धनार्थी होकर किसी के घर पर नहीं जाता है। हे अन्ध (नेत्र हीन) तू धन्य है जो तू धन कर प्रमत्तों का मुख दर्शन नहीं करता है। हे मूक (गूङ्गे) तू भी प्रशंसा के योग्य है जो तू गरीब बनकर धनकी इच्छासे किसी की स्तुति नहीं करता है। हे बधिर (न सुनने

वाले) तू स्तुति के योग्य है जो तू लुच्चों की वाणी नहीं सुनती है ॥
॥ ९१ ॥ अरे भिख मङ्गो ! क्या अब भी भीख मांगना न छोड़ोगे ?

भ्रातर्धातर शेष याचक जने वैराय से सर्वदा;
यस्माद्विक्रम शालिवाहन मही भृन्मुञ्जभोजादय: ।
अत्यन्तं चिरजीविनो न विहितास्ते विश्व जीवातवो;
मार्कण्ड ध्रुव लोमश प्रभृतय: सृष्टा: प्रभूतायुष: ॥२२॥

अर्थ—हे भाई विधाता तू कुल याचक लोगों से बैर रखता है। इसी से तूने विक्रमाजीत, शालिवाहन, मुञ्ज, और भोजादि राजाओं को चिरंजीवी नहीं बनाया क्योंकि यह लोग सब संसार को जीवनौषध थे। और मार्कंडेय, ध्रुव और लोमश आदि ऋषियों को चिरंजीवी बनाया जिन से याचकों को कौन लाभ होता है अर्थात् कुछ नहीं। बस सारांश यह है कि भीख मांगने वालों से परमात्मा भी अप्रसन्न रहता है ॥ २२ ॥

आस्वाद्य स्वयमेव वच्मि महतीमर्मच्छिदो वेदना,
माभूत् कस्य चिदप्ययं परिभवो याच्ञेति संसारिण: ।
पश्य भ्रातरियं हि यौवन जराधिक्कार केलिस्थली,
मानम्लानमपी गुण व्यतिकर प्रागल्भ्य गर्वच्युति: ॥२३॥

अर्थ — मैं स्वयं मर्मच्छेद करने वाली इस याचना के दु:ख का स्वाद चख के (अनुभव करके) कहता हूं कि किसी भी संसारी को याचना तिरस्कार न होवे। हे भैया ! यह याचना (भीख मांगना) तरुणाई व बुढ़ाई के सब मजा (स्वाद) को किरकिरा कर देती है और मान को मिटा देती है बल्कि स्याही लगा देती है और गुणों को भी अपगुण बना देती और चातुर्य्य के घमण्ड को ढहा देती है॥२३॥

नोट = वाह, धन्य है, इस श्लोक के कहने वाले को। भीख मांगना ऐसाही बुरा कर्म है ॥

स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्णतो यदास्यं भजेन्मलिनतां
किमिदं विचित्रम् । गृह्णन्परार्थमपि वारिनिधेःपयोऽपि;
मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥ २४ ॥

अर्थ—देखो । जबकि मेघ (बादल) परोपकारार्थ समुद्र से जल लेने पर सम्पूर्ण काला पड़जाता है तो उन मनुष्यों का मुख, जो केवल अपस्वार्थही के लिये धनियों से भीख मांग धन बटोरते हैं, श्याम = काला होजाता है तो क्या आश्चर्य की बात है ? अर्थात् भिक्षुक का मुख अवश्य काला पड़ना चाहिये क्योंकि भीख का मांगना या लेना ऐसाही महानीच, खोटा कर्म्म है ॥ २४ ॥

अनुसरति करि कपोलं भ्रमरः श्रवणेन ताड्य मानोऽपि ।
गणयति न तिरस्कारं दानान्ध विलोचनो नीचः ॥ २५ ॥

अर्थ=जैसे भौंरा हाथी के दान (मद) की कांक्षा से अन्धा होकर पुनः पुनः उसके कुम्भस्थल पर जाता है और उसके कानों से हटाने के वास्ते [अलग रहने के लिये] पीड़ित भी कीया जाता है परन्तु निर्लज्ज भ्रमर कुञ्जर के कर्ण ताडना की कुछ गणना [परवाह] नहीं करता । ऐसे ही दान लेने की आशा से अन्धा हुआ नीच जन तिरस्कार [अपमान] को नहीं गिनता [गिदानता] ॥ २५ ॥

हृदि लज्जोदरे वह्निः स्वभावादग्नि रुच्छ्रितः ।
तेन मे दग्ध लज्जस्य पुनरागमनं नृप ॥ २६ ॥

अर्थ = "फिर क्यों आये" इस प्रकार किसी राजासे पूछा गया कोई कवि युक्ति पूर्वक कहता है । हे राजन् ! आप जानते हैं कि हृदय में लज्जा और उदर [पेट] में अग्नि का निवास है, अग्नि की ज्वाला स्वभाव से ऊपर को उठती है इसी से मेरी लज्जा जलगई है तब मैं फिर आप के पास आया हूं अर्थात् पुनः आगमन में लज्जा का अभाव कारण है ॥ भावार्थ यहहै कि लज्जा रहित=निर्लज्ज ही

दान लेने के लिये दर दर दौड़ता फिरता है और भीख मांगनेको घर घर घूमता रहता है ॥ २६ ॥

विद्यावतः कुलीनस्य धनं याचितुमिच्छतः ।
कण्ठे परावत स्येव वाक्करोति गतागतम् ॥ २७ ॥

अर्थ=धन याचना की इच्छा रखने वाले कुलीन विद्वान के गले में परेवा की सी वाणी बाहर व भीतर आती व जाती है। भावार्थ= जिस तरह कबूतर गुटकता है अर्थात् कुछ शब्द भीतर और कुछ गले से बाहर करता है इसी प्रकार किसी से कुछ मांगने वाले खानदानी पण्डित की वाणी कुछ निकलती है और कुछ नहीं निकलती अर्थात् जब विद्वता=कुलीनता का आवेश होता तब कण्ठ से याचना वाणी बाहर नहीं निकलती और जब याचना वेश होता है तब बाहर निकलती है। सरांश यह है कि याचक=भिखारी ही गिडगिड़ाते हुए, ३२ दान्त दिखाते हुए, मुख नीचा किये हुए दीन वाणी बोलते हैं ॥ २७ ॥

याचक वीरोधन्यः करदान ग्राहकः स्वदातृभ्यः ।
कुरुते पराङ्मुखं वा ह्यतिनम्रं वा हरत्यसौ पुण्यम् ॥ २८ ॥

अर्थ=अपने दाताओं के हाथ से दान लेने वाला याचक वीर धन्य है। जो दाता को (प्रायः) पराङ्मुख करदेता है अर्थात् मुख फेरदेताहै अथवा नीचा करदेता अथवा उसके पुण्यों को छीन लेता है अर्थात् याचक को देखकर प्रायःदाता लोग मुख फेर लेते हैं अथवा न देसकने के कारण लज्जा कर नीचा मुख कर लेतेहैं अथवा जो न देने वाले निर्लज्जता से मुख को न फेरते न नीचा करते और न कुछ देते उनके पुण्यों को याचक लेजाते हैं सारांश=याचक सब प्रकार से दुःख दायक, निर्लज्ज, नीच और ढीठ होता है ॥ २८ ॥

निष्कन्दाः किमुकन्दरो दरभुवः क्षीणास्तरूणां त्वचः,
किं शुष्काःसरितः स्फुरग्दिरि गुरु ग्रावस्खलद्वीचयः।

प्रत्युत्थानमितस्ततः प्रतिदिनं कुर्वद्भिरुत ग्रीविभिर्यद्द्वारार्पित दृष्टिभिः क्षिति भुजां विद्वद्भिर ध्यास्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—विद्वान भिक्षुकों को देख कर एक महात्मा कहते हैं क्या पहाड़ों की कन्दराओं में अब कन्द नहीं है? क्या वृक्षों में वल्कल नहीं रहे? क्या बड़े बड़े पहाड़ों के पत्थरोंसे जिनकी लहरें टकरातीथीं वह नदियां सूख गईं ? जो नार (गर्दन) उठा कर प्रतिदिन राजाओं के द्वारों पर टकटकी लगाये विद्वान भिक्षुक दौड़ जारहे हैं ॥ १९ ॥

नोट = भिक्षुक को चाहे वह विद्वान हो चाहे वह मूर्ख हो सन्तोष नहीं होता ॥

द्वारे द्वारे परेषाम विरल मटति द्वारपालैः
करालै र्दृष्टो योऽप्याहतःसन्रणाति गणयति स्वाप
मानं तुनैव । क्षन्तुं शक्नोति नान्यं स्वसदृश मितरागारम
प्याश्रयन्तं, आत्म्य स्यात्मोदरार्थे कथमहह शुनानो समो याचकः स्यात् ॥ २० ॥

अर्थ....हहह याचक कुत्ते से किसी प्रकार कम नहीं, जो दौड़ दौड़ कर दूसरों के द्वारों पर जाता है । और निठुर (कठोर = निर्दयी) द्वारपालों से देखा जाकर धमकाया व निकाला जाता है फिर भी वह याचक बड़ बड़ाते हुऐ कुछ मांगता ही रहता है । और जो उस का तिरस्कार किया जाता है उसका वह कुछ खयाल नहीं करता और अपने समान दूसरे भिक्षुकों को दूसरों के द्वारपर देख भी नहीं सकता और प्रत्येक के सामने पेट पालने के निमित्त मारा मारा फिरता है । सारांश यह है कि भिक्षुक में बहुधा कुत्ते के सारे ही गुण पाये जाते हैं ॥ २० ॥

दक्षिणाशा प्रवृत्तस्य प्रसारित करस्य च ।
तेजस्तेजस्विनो ऽर्कस्य हीयते ऽन्यस्य का कथा २१

अर्थ—जब एक बड़े भारी तेजस्वी सूर्य्य का तेज दक्षिण दिशा में जाकर किरणें फैलाने से न्यून होजाता है तब दूसरे साधारण पुरुषों का, जो दक्षिणा की आशा किये हुए दूसरों के द्वारों पर हाथ फैलाये फिरते रहते हैं, तेज (महत्व) नष्ट होजावे तो आश्चर्य्य ही क्या है अर्थात् भिक्षुक के पास मनुष्यता की महिमा कदी नहीं ठहरती ॥ ३१ ॥

वदनाच्च बहिर्यान्ति प्राणा याच्ञाक्षरैः सह ॥३२॥

अर्थ—जिस समय भिक्षुक अपने मुख से देहि वा दीयताम (देउ या दीजियेगा) इत्यादि याचनाक्षरों को बोलताहै उसी समय उस के (भिक्षुक के) प्राण भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं। भावार्थ यह है कि मनुष्य मांगते ही मुरदे के समान क्रान्ति रहित रह जाता है। हाय, मांगना ऐसाही दुष्ट कर्म्म है ॥३२॥

पुरतः प्रेरयत्याशा लज्जा पृष्ठावलम्बिनी ।
ततो लज्जाशयोर्मध्ये दोलायत्यर्थिनां मनः ॥३३॥

अर्थ—जिस समय भिक्षुक भिक्षा मांगने को होता है उस समय उसके हृदय में लज्जा और आशा दोनों आपस में लड़ा करतीं हैं अर्थात् लज्जा भिक्षुक को दाता के सम्मुख नहीं जाने देती अर्थात् नहीं मांगने देती और आशा (दान या भिक्षा लेनेकी) याचक को दाता के सामने जाने की आज्ञा देती है अर्थात् भिक्षुक को याचना करने की प्रेरणा करती है। उस समय याचक का चित्त आशा और लज्जा के बीच दोलायमान होता है (झूलता है)। अन्त में उस संग्राम के बीच यदि आशा हार जाती है तो भिक्षुक भीख नहीं मांगता और यदि लज्जा पराजित हो जाती है तो याचक निर्भय होकर मांगता है। तात्पर्य्य यह है कि भीख मांगने वाले के पास लज्जा

=शर्म नहीं रहती या यों कहो कि भीख (दैनी) लेने वाला लज्जा राहित [निर्लज्ज = बेशर्म] होता है ॥ ३३ ॥

करान्प्रसार्य रविणा दक्षिणाशावलम्बिना ।
न केवलं मनेनात्मा दिवसोऽपि लघूकृतः ॥ ३४ ॥

अर्थ=दक्षिणा आशा [दिशा] का अवलम्बन [आश्रय] करने वाले इस सूर्य ने कर [किरण] फैलाकर केवल अपना आत्मा ही लघु [हलका वतुच्छ] नहीं किया वल्कि दिनको भी छोटा करदिया ऐसेही जो दक्षिणा की आशा में प्रवृत्ति होकर कर=हाथ फैलाताहै वह अपनेही हीं को हलका=तुच्छ नहीं करता वरन अपने सम्बन्धियों को भी छोटा करदेताहै । भावार्थ=भीख औरदान लेने वाले केसम्बन्धियों को भी नीचा देखना पड़ता है । फिर न जाने श्रेष्ट=कुलीन लोग दान-पुन्य और भीख-भूर की "दैनी" लकर क्यों नीच वनते और अपने रिश्तेदारों को बनाते हैं ? ॥ ३४ ॥

शूराः के ऽपि पुरःस्थितां रिपुनर श्रेणिं सहन्ते सुखं,
धीराः केचन काम वाण सदृशां कान्ता दृगन्ताहतिम्
केचित् कूरर वाश्च पञ्चव दनान्दन्ती चपेटान्भटा,
नैत्रार्थि मकरं प्रसारित करं कश्चिद्विसोढुं क्षमः ॥ ३५ ॥

अर्थ =कितने ही शूर वीर लोग आगे सन्मुख डटी हुई वैरियों की सेना का सामना करते हैं । कितने ही वीर पुरुष काम देव के वाणों के समान कामिनियोंके कटाक्षों को भी सहन करलेते हैं । कोई एक किन्हीं लुच्चों की गालियांभी सहार लेते हैं । और कोई एक सिपाही लोग हाथियों की सूंडों के झपट्टाओं को भी सह लेते हैं । किन्तु हाथ फैलाये हुए याचकों के झुण्ड के आक्रमण को कोई नहीं सहार सक्ता ।

भावार्थ—अच्छे २ धनवान् और विद्यावान् और बड़े २ शूर वीर और दाता लोग भी भिक्षुकों से भय खाया करते हैं क्योंकि उनके स्वरूप और कर्त्तव्य बडे भयानक और आश्चर्य्य दायक होते हैं॥ २४॥

बहुत से भिक्षुकों को भीख मांगते हुए देख कर एक विद्वान ने उन से पूछा कि भाई ! आप लोग दर दर क्यों याचना करते फिरते हो ?

भिक्षुक—भोजन और वस्त्र के लिये ॥

विद्वान—क्या आप लोगों के पास नहीं हैं ?

भिक्षुक—नहीं, यदि हमारे पास ही होते तो हम क्यों मांगते!

विद्वान—अरे प्यारे भाइयो ! देखो, तनक आंख खोल कर देखो, ईश्वर ने आपकी आवश्यकताओं के लिये सम्पूर्ण पदार्थ आपके आधीन किये हुए हैं ॥

भिक्षुक—कहां हैं ?

विद्वान—सुनो ॥

वस्त्र वृक्षों की छाल, विछौना वृक्षो के पत्र, घर वृक्षों के तले के भाग, फूल फल क्षुधा की निवृत्ति के लिये, पहाड़ की नदियों का जल तृषा की शान्ति के लिये है ही, मुग्ध मृगों के संग खेल कूद और पक्षियों से मित्रता हो सक्ती है, रात्रि में चन्द्रमा ही दीपक है, सब धन और प्रताप तो अपने आधीन हैं तो भी कृपण लोग (भिक्षुक) मांगते फिरते हैं यह बड़ा आश्चर्य है । यथा—

वासो वल्कलमास्तरः किसलयान्यो कस्तरूणां तलं,
मूलानि क्षतये क्षुधां गिरिनदी तोयं तृषा शान्तये ।
क्रीड़ा मुग्ध मृगैर्वयांसि सुहृदो नक्तं प्रदीपः शशी,
स्वाधीने विभवे तथापि कृपणा याचन्त इत्यद्भुतम्॥ २६ ॥

इसी प्रकार एक और दूसरे विद्वान ने भी कहाहै ॥

वनों में स्वादु फलों वाले वृक्ष बहुत हैं, निर्मल झरनों का जल पीने के लिये है, पहिरने के लिये वस्त्र वृक्षों की छाल है, आश्रय पर्वत की गुफाहै, शय्या लतावल्लरी है, रात्रि में प्रकाश के लिये चन्द्रमा की किरणें हैं, मैत्री मृगोंसेहो सक्ती है, सबधन और प्रताप तो अपने आधीन हैं परन्तु फिरभी लोग(याचक) नरपति की सेवा करते हैं = मांगतेहै बस यही बड़ा आश्चर्य है। यथा—

सन्ति स्वादुफला वनेषु तरवः स्वच्छं पयो नैर्झरं,
वासो वल्कलमाश्रयो गिरि गुहा शय्या लतावल्लरी।
आलोकाय निशासु चन्द्र किरणाः सख्यं कुरङ्गैःसह,
स्वाधीनें विभवेऽप्यहो नरपतिं सेवन्त इत्यद्भुतम् ॥ २७ ॥

स्थानाभाव के कारण संस्कृत कवियों के वाक्य और अधिक नहीं लिखता। ईश्वर ने चाहा तो चौथे भाग में लिख दिखलाऊंगा ॥

अब कुछ आर्य्य (हिन्दी) भाषा के कवियों की कविता भी "दानरु भिक्षाग्रहण निषेध पर" ध्यान धर श्रवण करलीजियेगा ॥

श्री मान् ठाकुर विक्रमसिंह गौड़ वर्म्मा ग्राम बनकोटा- पोस्ट वजीरगंज- ज़िला बदायूं निवासी रचित—

॥ ❋ ॥ याचना दोष वर्णन ॥ ❋ ॥

॥ मालती छंद सवैया ॥ १ ॥

धिक है उनको जो भजैं रणतैं धिक हैं जो करैं मर्य्याद उलंघन।
धिक उद्यम हीन रहैं धिक सो जो करैं धन गांठि में बांधिके लंघन॥
धिक हैं जो तजैं पितु मात कहो धिक्कार उनहिं जो करैं सत संग न।
धिक है धिक है उनको कवि विक्रम जो सकुटुम्ब जियैं कर मंगन ॥

॥ माधवी छंद सवैया ॥ १ ॥

उनको धिक जो न करैं धन भोग उनहि धिक है जो रहैं विन शिक्षा॥

उनको धिक है जो करें त्रिय शोकित हैं धिक वे जो तजैं गुरु दिक्षा॥
धिक है उनको जो दया न करैं धिक वृद्ध वही जो करें रति इक्षा।
धिक हैं धिक हैं कवि विक्रम वोही जो पालें कुटुम्बकोमांगके भिक्षा॥

॥ क्रीट छंद सवैय्या ॥ ३ ॥

जो न करै गुरु लोगन को डर सो नर नीच निलज्ज कहावत।
पंचन को जो कहो न करै वुध ताहू को ढीठ निलज्ज बतावत॥
विक्रम वह निरलज्ज बड़ो अपमान भये पर जो न लजावत॥
भिक्षुक है सब तैं निरलज्ज जो देश विदेश तें मांगिके लावत॥

॥ मत्त गयन्द छंद ॥ ४ ॥

जो सब लोगन से परिहासत नासत वह भय गौरव सारे॥
उद्यम कर्म विनासत हैं वह विक्रम जो भये आलस वारे॥
बुद्धि विवेक विनाश करैं जो रहें अवलान को अंकमें डारे।
आदर औ सन्मान बड़ाई को नासत भीख के मांगन हारे॥

दुर्मिला छन्द सवैया ॥ ५ ॥

जिमि मान से ज्ञान नसै निश्चै जिमि चिन्त को लागि शरीर लटै।
जिमि उद्यम के बिन वित्त नसै जिमि क्रोध को लागिसुबुद्धि हटै॥
जिमि फूट परे समुदाय नसे जिमि पौन प्रचण्ड से मेघ छटै।
कवि विक्रम तैसे प्रतिग्रह कर्म से ब्राह्मण को ब्रह्म तेज घटै॥

॥ क्रीट छन्द सवैया ॥ ६ ॥

बूड़ि मरैं क्यों न वे सुत क्रूर जो मातु पिता को हृदय नित जारत।
बूड़ि मरैं क्यों न कातर वे जो अनी के जुरे पग पाछे को टारत॥
बूड़ि मरैं क्यों नवे कवि विक्रम प्रीति नहीं जिन की कोई धारत।
बूड़ि मरैं क्यों न मान विहीन जो ऊंच अरु नीच पै हाथ पसारत॥

क्रीट छंद सवैया ॥ ७ ॥

स्तुति निन्दा कौन करै अरु कौन करै अधमाई को साधन।

कौन लहै अपमान अनादर कौन बनै लघुताई को भाजन ॥
कौन दलै गुण लाज महत्व को कौन लहै अतिही हलुकापन।
विक्रम है वह केवल याचक याही से ज्ञानी कहैं धिक याचन॥

॥ मत्त गयंद छंद ॥ ८ ॥

दुःख क्षुधति को वही जानत जो सुख में उपवास को ठानै।
वित्त की पीर वही नर जानत जो श्रम राखि घनी धन आनै॥
सत्य असत्य को जानै वही तजि पक्ष को मानत तर्क प्रमानैं।
विक्रमसिंह अलोभी न जानत सूम उदार को याचक जानै॥

॥ दोहा ॥

मान महत कहं रहत है, अरु कहं लाज सनेहु ।
विक्रम जब मुख से कहै, कछु हमहूं को देहु ॥९॥
याचक को नहिं होय कछु, धन दाता की पीर ।
भूपालन को दुःख भये , याचक अधम शरीर ॥१०॥
यद्यपि उत्तम दान है , या से जग उपकार ।
सब तें नीचो मांगनो , मंगन को धिक्कार ॥११॥

श्री मान्वर चतुर्वेदी पण्डित श्यामलाल जी शर्म्मा सवाई जयपुर–राजपूताना रचित—

॥ दोहा ॥

कार सबी संसार में, उत्तम किय करतार ।
एक बुरो भिक्षा करन, करत तिनहिं धिक्कार॥१॥

॥ कवित्त ॥

ठिठक ठिठक कर प्रथम तो पास जाय,
वचन कहत धीरें दीनता बखान में ।
पुन वो रिझान हेत उपमा अनेक देय,
सूमहू को दाता कहै मूढ़ को सयान में ॥

श्याम कवि तौहू देखि याचक से फेरै मुख,
याचक निठुर के जु बसै लोभ प्रान में।
ध्यान सनमान में न जाति कुल कानै में न,
दैनही की भीख लेय भिक्षुक जहान में॥२॥

॥ सवैया ॥

सुन वामन इन्द्र श्री कृष्णहि के इतिहास पुरातन ज्ञान परै।
यह मांगवें श्याम बुरो सबतै इहतै औ निकृष्ट न जान परै॥
प्रति ग्राहकता मंगवे से कुलीन बड़े कुलहीन कहा न परै।
करतार करै कर देह के संग करौ रुजगार न हानि परै॥३॥
परमेश्वर ने दई बुद्धि तुमें भलि भांति विचार प्रवीन करो।
चलिआत पुरातन रीति सही अपने कुलकी सोई लीन करो॥
तजिये प्रति ग्राहकता मंगवो कवि श्याम स्वधर्म यकीन करो।
भई भूल में भूल भई सो भई अबहू चित चेत कुलीन करो॥४॥
जा दिन श्याम छलो बलि वामन ता दिन ते जु भयो जग हांको।
शुक्र को लोचन एक हरो अरु राज हरो जु महा प्रभुता को॥
स्वर्ग मही को सुवास छुड़ाय पताल में ले गयो दान जु वाको।
वारने हू जो खरो भय तो विसवास न कोऊ करै मंगताको॥५॥
आवत कोऊ नजीक न देत औ दूरहि ते जु पुकारत भारौ।
कोऊ सुनें न सुनें जो कहै तुअ काहे को मेरे दुआर पै ठारौ॥
जाकर म्हैनत हैं कर पांय कुमाय के खाहु कटै जो जमारौ।
ह्वै अपमान औ मान जितौ सब जानत है वह मांगवे हारौ॥६॥
सेठ औंर साह महीपत आदि हू पूजत पांय बड़े जो गुसांई।
सिद्ध किये तिनके पुरखो जप यज्ञ कथा सु पुरानन गाई॥
श्याम कहै तिनकी ये दशा लखि जाने परी कुलकी प्रभुताई।

आवत नेक हया न जिन सब इज्जत खोय के मांगत पाई॥७॥
ईश्वर श्याम कहैं जिनको तिनको यह हाल पुरानन गायौ।
राम हू के मन लोभ वसो जब कंचन के मृग पै उठि धायौ॥
सिय की बुद्धि मलीन भई निज रक्षक शेष पिछे से पठायौ।
भूप ह्वै रावण भीख लई जब आप मर्यो कुल नाश करायौ॥८॥

॥ कवित्त ॥

येरे मीत मेरे सुनों बात यह सांची कहूं,
नीके लो विचार नीके बैठि नीति वान में।
थोरे से जु लोभ ही तै होय जो अधिक हान,
लोभ तज साजिये उपाय हान जान में॥
श्याम कहै मानुष हो मानुष के आगे जाय,
आत ना शरम दांत काढ़ के रिरान में।
मांगबे से मान सबही को सबही तै जात,
मान गये जीवतेही मरे या जहान में॥ ९॥

॥ दोहा ॥

तज भिक्षा शिक्षा यहै लेहु सुहृद गन मान।
मिटै ग्लानि दालिद्र अरु जग में हो सनमान॥ १०॥

श्रीमानवर गुपाल जी कविराय वृन्दावन निवासी रचित—

॥ सोरठा ॥

का के द्वारे जाय, कहैं कि हम को दीजिये।
मर जैये विष खाय, जीवत भीख न मांगिये॥ १॥

॥ कवित्त ॥

राखत पराई आस चित्त में उदास रहैं,
संतत विनाश और निवास दुख भारी को।
प्रीति रहजाति बरकाति नहीं होत आव,

आदर न रहै निरलज्ज रहै गारी को ॥
लैनो होत यहां आनसी में वहां दैनो दिन ,
रैनौ ही खराव चित चैनों ना आगारी को ।
डोलै द्वार द्वारी या में यह बड़ी ख्वारी याते ,
कहत गुपाल काम कछु, ना भिखारी को ॥ १ ॥

श्रीमान् वर पण्डित रामस्वरूपजी पाठक अफ़ज़लगढ़ निवासी रचित—

॥ सवैया ॥

मान घटै अरु ज्ञान घटै पुनि तेज घटै नर व्है अति छोटा
धर्म्म घटै शुभ कर्म्म घटै अरु शर्म्म घटै व्है बुद्धिको टोटा ॥
वेद व शास्त्र व नीति विरुद्ध घटावत ग्लानि मलानिहै कोटा ।
पाठक नीच महान कोऊ नहिं मांगन जैसा ये कर्म्महै खोटा ॥ १ ॥

श्रीमान् वर पण्डित कविदेव जी शर्म्मा रचित—

कवित्त

मान सन्मान को पयान होत पहिले ही ,
यद्यपि निपट गुणी गिरि हू ते गरूवो ।
कहै कवि देव वार वार यश उच्चरत ,
चुटकी के देत लागे कुटकी ते करुवो ॥
अति ही अजान बाहु तऊ तन थोरो दीसै ,
मन माहिं लसै ज्योंहि डोरे कैसो मरुवो ।
तृण हू ते तुल हू ते फूल हू ते धूल हू ते ,
मेरे जान सबही ते मांगिवो है हरुवो ॥ १ ॥

श्रीमान् वर लाला शारदा प्रशाद जी नाज़िर राज्य मैहर (रसैन्द्र) रचित—

॥ सवैया ॥

जात कुजात भये मंगता सब उद्दिम पै श्रम ना मन भावैं ॥

लेत कुदान भरे अभिमान जनौ पहिरे कुल विप्र कहावें ॥
शारद कौन सुनै कछु सीख भली अति भीख किसैंतहिपावें ॥
काढ़त दांत पसारत हाथ कि स्वान समान चहूंदिश धावें ॥१॥
श्री मान्वर ठाकुर गिरवर सिंह जी वर्म्मा रईस प्रधान आर्य्य-समाज ग्राम सावितगढ़ पोस्ट पहासू जिला बुलन्द शहर रचित—

॥ कवित्त ॥

याचना के करिबे सों नीच कोउ कर्म नाहिं,
जासों मुख कान्ति नित्य रहती मलीन है।
बोलें वचन दीन आदर करें ना कुलीन,
तन होत हू क्षीण औ दशा सब हीन है॥
छोड़ो दुराचार करो विद्या प्रचार सब हू,
याचक नित्य मृत्यु के दुःख में जो लीन है।
होकर धर्म अनुरागी बनो लक्ष्मी के भागी,
य भिक्षा को मांगिवो महत्व लेत छीन है॥२॥

॥ श्लोक ॥

याचनं जन्म पर्य्यन्तं कर्त्तव्यं न कदाचन।
यन्मृत्योः दुस्तरं दुःखं नित्यं जीविति याचकः॥२॥

अर्थ—मनुष्य को जन्मपर्य्यन्त = आयुभर भीख कभी भी नहीं मांगना चाहिये क्योंकि भीख मांगने वाले को प्रतिदिन = रोज़ रोज़ वही महा कठिन = अगम्य दुःख झेलने = सहने पड़ते हैं जोकि मरण समय प्राप्ति होते हैं॥

श्रीमान वर पण्डित रामचन्द्र जी शर्म्मा [चन्द्र] पोस्ट जैत ज़िला मथुरा निवासी रचित—

॥ दोहा ॥

पावन कुल कीरति सकल। गुन गौरव समुदाय।

हात पसारत दान हित । [चन्द्र] तुरत विन साथ ॥ १ ॥
ताजि विद्या कुल जाति कौ । मान तुच्छ धन हेत ।
मांगत हाथ पसारि जो । सो पामर जड़ प्रेत ॥ २ ॥
इक मरिबो और मांगबो । द्वै में नीकौ कौन ।
नीकौ मरिबो ही अहे । [चन्द्र] समझि मति मौन ॥ ३ ॥

॥ षट पदी छंद ॥

क्यों अपनौ कुल मान खोइ तू हात पसारत ।
हमें देहु महाराज वचन कहि दांत निकारत ॥
तुच्छ लोभ लगि नीचन की दुदकार सहारत ।
दूरि किये हू तिन्हें प्रशंसत हिये न हारत ॥
जा दान लेत प्रभु कौ भयौ वामन आंगुर देह सुनि ।
कहि तेरी कहा गति होयगी ताहि लेत उर (चन्द्र) गुनि ॥४॥

॥ माधवी वृत ॥

सब मानुषता प्रभु तोहि दई फिर क्यों निज जन्म बिगारतहै ।
हटि या लघु पेट के पोषन कों मुख नीचन केहि निहारतहै ॥
गहि आलस भीख भरोसे जिए पुरुषारथ (चन्द्र) विसारतहै ।
मरिजात न क्यों शठ तू तबही जब मांगिके हाथ पसारतहै ॥५॥

॥ कुण्डलिया ॥

जौ मानें मेरी कही ए मति मान सुजान ।
तौ अटूट प्रण धारि उर तजिदे लैबौ दान ॥
तजि दै लैबौ दान मान तेरौ सरसैगौ ।
दुखदाई दारिद्र तोहि ताजि तुरत नसैगौ ।
(चन्द्र) त्यागि आलस्य युक्ति उद्यम की ठानें ।
होय तेरौ कल्यान कही मेरी जौ मानें ॥ ६ ॥

श्रीमान् वर गंगाधर जी वर्म्मा ग्राम गांठौली पोस्ट गोवर्धन जिला मथुरा निवासी रचित—

॥ दोहा ॥

करुणा कर विनती सुनों । जग के सिरजन हार ।
देश आर्य्यावर्त्त का । वेगी करो सुधार ॥ १ ॥

॥ चौपाई ॥

भान अस्त विद्या का भाई । जग में रही अविद्या छाई ॥
समझे ना नर भये अनारी । भीख मांग खाते नर नारी ॥
जाते बुद्धि नाश होय भाई । बुद्धि नाश ते सर्वस जाई ॥
सर्वस गये पता ना लागे । शुभ कर्मन ते वह नर भागे ॥
भीख चली जबते दुनियां में । पुरुषार्थ बिन दुख नर पामें ॥
जो नर गृस्थाश्रम में भाई । आसा केर गृहस्थ की जाई ॥
जग में कष्ट सहै अति वह नर । पशू बनें अन्त दाता के घर ॥
श्री महाराज मनू बतलाते । गृहस्थी होय भीख ले खाते ॥
पशू बनें मरने पर जाई । जाते भीख तजो सब भाई ॥ २ ॥

॥ सवैया ॥

क्योंकर तू भव कूप गिरै घर २ में फिरै नर देह न बारंबार मिलैगी
होवे नष्ट सहै अति कष्ट यह भीख न तेरे साथ चलैगी ॥
शुभ कर्म कर्यौ न कछु तेंनें यह भीख ललाट भभूत मलैगी॥
अंत मरैं पशु जाय बनें गंगाधर तेरी कछु न चलैगी ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

निज स्वारथ के कारणें । भीख मांग जो खाय
या जग में दुःख भोग के । अन्त नर्क को जाय ॥ ४ ॥

॥ चौपाई ॥

जो नर भीख मांग के खाता, धर्म कर्म और ज्ञान नसाता ५ ॥

॥ लावनी ॥

सब कर्म्मों से नीच कर्म्म एक भीख मांग जो नर खाई ।
इससे बचो सभी नर नारी गंगाधर कह समझाई १ ॥

श्री मान् चौधरी नवलसिंह जी वर्म्मा मुज़फ़्फ़राबाद ज़िला सहारन पुर निवासी रचित—

॥ लावनी ॥

पुरुषारथ को छोड़ भीख मांग के खाना नहीं चाहिये ।
भिखमंगों का नाम महाराज बताना नहीं चाहिये ॥
पर उपकार नहीं करैं उन्हें फिर भगवां बाना नहीं चाहिये ।
घर घर दर दर रात दिन कुत्ते भौंकाना नहीं चाहिये ॥
सत्य उपदेश जिस में नहीं ऐसे राग का गाना नहीं चाहिये ।
सत्य वचन को किसी से डर के छिपाना नहीं चाहिये ॥
प्रतिग्रह में फंसें उन्हें पण्डित कहलाना नहीं चाहिये ॥ १ ॥

मगध देश के महाराजा श्री जरासंध जी ने श्री कृष्ण भगवान से कहा है—

॥ चौपाई ॥

याचक जो पर द्वारे आवै । बड़ो भूप सोउ अतिथि कहावै ॥ १ ॥

श्रीमान् वर पण्डित मोहनलालात्मज श्रीमान्वर पण्डित गणेशीलाल जी शर्म्मा (कवि देव गणेश) मथुरा बासी कृत—

॥ * ॥ दोहा ॥ * ॥

दान न दाना लेत हैं, लेते दान नदान ।
पानन तर पानन नहीं, करते कबहुं सुजान । १ ।

* ॥ कुण्डलिया ॥ *

कूकर शूकर सुपच ते भिक्षुक महा निकृष्ट ।
सर्व अभोज्यन ते महा भिक्षा अन्न ऽतिभृष्ट ॥

भिक्षा अन्न ऽतिभृष्ट हानि कारक अनिष्ट कर।
कूकर सम भूंकरत फिरत मांगत भिक्षुक नर॥
मृग तृष्णावत भ्रमत भुलाने से निशिवासर।
पै गणेश नहिं तुष्ट होत भिक्षुक अरु कूकर २॥

❋ दुर्मिलाछन्द ❋

इक पाप महा छलि छिद्रन सों वानिपादा प्रपंच कौ राचिवो है।
इक पाप महावर मंच पै बैठि कै झूंठी कथान कौ बाँचिवो है॥
इक पाप महा बहु रूपिया रूपन धारि निलज्ज व्है नाँचिवो है।
सब पापन ऊपर पाप महा कवि देव गणेश जू याचिवो है॥३॥

॥ कवित्त ॥

इच्छा के करे तैं याके वामन भये हैं विष्णु,
मांगत ही क्षण द्वारपाल तन पायो है।
हाटक वैडूर्य्य धाम तजि दश कंधर हू,
मांगत ही क्षण जरामूल सों मिटायो है॥
देव जू गणेश बहु वार सुर राज हू,
को गौरव गुरुत्व मांगवे नें ही घटायो है।
याही ते हमारे पूर्वजन अति निष्ट जान,
भीख मांगिवे ते करतल को हटायो है॥ ४॥
मत भरमाय जात थिरता विलाय जात,
अंगन अमोघ अघ औघतासी छाय जात
क्रोध विलगाय जात निलजता आय जात,
गाली औ गलौज औज रगन समाय जात॥
कीर्ति छिटकाय जात देव जू गणेश ताकी,
दौरि कैं अकीर्ति दूर देशन छाइय जात।

यश तप तेज बल गौरव गुरुत्व सत्य,
जाति कौ महत्व भीख मांगत नसायजात ॥ ५ ॥
ब्राह्मण कौ कर्म्म वेदाध्ययन समेटि कर,
भोजन शिले कौ अन्न करिबो नगीच कौ।
क्षत्रिन कौ कर्म्म राज्य धर्म सों प्रजापालन,
अमर पद पायबौ समर में मीच कौ ॥
वैश्यन कौ कर्म्म क्रय विक्रय व्यौपार भार,
लैन दैन मांहिं सम हानि लाभ बीच कौ।
देव जू गणेश की सों पैया महीतल पर,
सब सों निकृष्ट कर्म मांगिबो है नीच कौ ॥ ६

॥ सोरठा ॥

त्यागो भिक्षा दान, श्री दामोदर विप्र वर।
महा निकृष्ट निदान, कर्म्म नीच को जान कर ॥ ७ ॥

श्री मान् ठाकुर कर्णसिंह जी वर्म्मा ग्राम चैंडौली–पोस्ट हर्दुआगंज–ज़िला अलीगढ़ निवासी रचित–

॥ विचारणीय–पंचक ॥

॥ दोहा ॥

धर्म्म हीन हा होगये, आज विप्र महाराज।
भीख मांग भरते उदर, आवति नेंक न लाज ॥ १ ॥
निन्दा होती है बड़ी, इनको भिक्षुक जान।
पर कबहू न विचारते, ये पाधा बिन ज्ञान ॥ २ ॥
एक दिना सब से बड़े, कहलाये जग मांहिं।
आज मन्द मति से रहे, पर हा वैसे नाहिं ॥ ३ ॥
कितनौ ये परिताप है, सोचौ तौ यदि आप।
या उद्यम से हो गये, निन्दित गुरु मा बाप ॥ ४ ॥

विद्या पढ़ त्यागो सभी, भिक्षा ग्राही रीति ।
तब ही करण सुधारसे, राख सकौगे प्रीति ॥५॥

॥ गीत ॥

बानि बैठे अलि विप्र भिखारी, इन को नेंक निहारी ।
भिक्षा मांग मांग कुल पालें, कर्म्म प्रतिग्रह धारो ॥ १ ॥ बु०—
वैदिक व्रत में प्रीति न राखी, उलटौ मन्त्र विचारौ ।
नाम रह्यौ न यज्ञ याजन को, सत्य विवेक विसारौ ॥२॥ ब०—
इनके विगड़े औरहु विगड़े, गौरव कौ धन हारौ ।
छायगई इनके अपयश से, शोक शोक दिशि चारौ ॥३॥ ब.—
सहजहि मिलें भीख से रोटी, येही उद्यम प्यारौ ।
ऐसे पामर पोच दुरांशी, खोय रहे सुख सारौ ॥ ४ ॥ ब०—
द्वार द्वार लुटिया लै डोलें, डस गयौ अवगुण कारौ ।
रह्यौ न तेज ब्रह्म कुल में अब, हाय करण दुःख भारौ॥५॥ब०—

श्री मान् वर पण्डित शालिग्राम जी शर्म्मा उपदेशक आर्य्य समाज ग्राम बरोठा पोष्ट हरदुआगंज ज़िलअ अलीगढ़ रचित्—

॥ भिक्षा ग्रहण निषेध ॥

॥ दोहा ॥

विप्र महोदय चेतिये, वोदी बान विसार ।
भीख मांगना धर्म्म कब, उत्तर देउ विचार ॥ १ ॥
ऋषि मुनि योगी हो गये, बहुतेरे द्विज राज ।
तिन हीं के तुम पोच भये, भिक्षा लेत न लाज ॥ २ ॥
कुल मर्य्यादा त्यागि हा, जीओगे जग माहिं ।
तौ क्या पाओगे सुयश, क्यों कछु समझो नाहिं ॥३॥
चार वेद षट शास्त्र पढ़, सांचे द्विज बन लेहु ।
शालिग्राम सुसीख दें, लेहु न कछु पै देहु ॥ ४ ॥

श्रीमान् वर चतुर्वेदी पण्डित श्रीराधाकृष्ण जी शर्मा निवासी ग्राम पारना पोस्ट कचौरा ज़िलअ आगरा रचित—

* भिक्षा व दान ग्रहण निषेध *

॥ कुण्डलिया ॥

भिक्षा तें निन्दित करम या जग में नहिं कोय।
घर घर डोलत दीन ह्वै पुरुषारथ को खोय॥
पुरुषारथ को खोय धोय लज्जा यश गावें।
झूंठ प्रशंसा करें तहां कहुं कौड़ी पावें॥
राधाकृष्ण जु कहत सुनों हो मेरी शिक्षा।
सब अवगुण को मूल भूल मति लीजो भिक्षा॥ १॥
ईश्वर ने सब को दियो बल बुद्धी अरु ज्ञान।
पुरुषारथ को खोय के फंसे महा अज्ञान॥
फंसे महा अज्ञान दान की आस लगावें।
महा तुच्छ अति नीच उन्हीं पर मांगन जावें॥
राधाकृष्ण जु कहत उच्च पद गहौ अधीश्वर।
भिक्षा वृत्ती त्यागि ध्यान उर राखौ ईश्वर॥ २॥
जब से यह वृत्ती गही विद्या की भई हान।
एक भीख के आसरे विसरि गयो सब ज्ञान॥
विसरि गयौ सब ज्ञान ध्यान सत कर्म न दीनों।
पुरुषारथ को छोड़ि ओढ़ि कर दान जु लीन्हों॥
भणित कवीश्वर कृष्ण न्यून पद पायौ तब से।
भिक्षा में दिय ध्यान छोड़ विद्या को जब से॥ ३॥
जब ते भारत में भयो दान कर्म व्यौपार।
बुद्धि पराक्रम नशिगयो, बनि गयो देश भिखार॥
बनि गयो देश भिखार मरम श्रुति शास्त्र भुलाने।

ठानै कुकर्मरु झूंठ एक स्वारथ प्रिय माने ॥
कृष्ण कहैं बनि गये मित्र सबही हम तब तें।
झूंठा शक्ती हीन आस भिक्षा पर जब तें ॥ ४ ॥
अब तो सोचौ बुद्ध जन छोड़ौ भिक्षा कर्म।
बीती ताहि बिसार के धारौ अपनो धर्म ॥
धारो अपनो धर्म कर्म सत ध्यान लगावो।
अग्नि होत्र नित करो जाल सब पोप भुलावो ॥
कृष्ण कहैं प्रिय मित्र उऋण व्है हौ तुम तब तौ।
मात्र भूमि के काज करौ कुछ हू श्रम अब तौ ॥५॥

॥ कवित्त ॥

आनत दान दया कहुं छोड़ औ मानसी वस्तु अमोल न जानत।
जानत नाहिं कछू सत धर्म औ कर्म करें अपने मन मानत ॥
मानत सीख न वेदनि की पढ़ि झूंठे प्रपंचनि रारि को ठानत।
ठानत और की और कछू कावे कृष्ण भने मनमें यह आनत॥६॥

पक्ष पात छोड़ो मित्र देश उन्नती को करो,
देखौ जापान मुलक कैसौ बलवान है।
रूस महा प्रबल प्रख्यात सर्व भूमि पर,
तासों कर युद्ध लेत फतह महान है॥
कारण तो सोचौ नेक चक्षु अब खोल देखो,
भिक्षा दान लेवे को व जानत न नाम है।
एक मति धार सब करौ पुरुषारथ को,
बीती को बिसारि अब जानों प्रिय मान है॥७॥

॥ दोहा ॥

दानन लीजो दान सो, दान तजौ दे दान।
दान हानि को मूल है, दान जु खोवै मान ॥ ८ ॥

दान मान को कीजिये, विद्या धर्मरु ज्ञान।
द्रव्य दान को त्यागिये, अतिनिकृष्ट जिय जान ॥९॥

॥ सोरठा ॥

कातरता को छोड़, कर पुरुषारथ दान तजि।
भूलन तू कर ओड़, प्राण कंठ गत है तऊ ॥१०॥
है यह वृत्ति मलीन, प्रिय विचारि देखौ तनिक।
मान महत कर हीन, स्वर्ग राज पावौ न किन ॥११॥

श्री मान्वर ठाकुर वलदेव सिंह जी वर्म्मा चौहान ग्राम मकरन्दपुर जिला मैनपुरी निवासी रचित—

॥ दोहा ॥

सब तें लघु है मांगिवो, भाखत यहीं पुरान।
बल पै मांगत ही भये, वामन तन भगवान ॥१॥
पुरुषारथ को त्यागि, भीख मांगि जो खाय।
ताते अधम निलज्ज नर, कौन दूसरो आय ॥२॥
कृपा करी जगदीश ने, दीनों मनुज शरीर।
पुरुषारथ विसराय के, क्यों बन रहे हक़ीर ॥३॥
दान लेन से दोष जो, वरणत हूं अब मीत।
सुनिये चित्त लगाय के, भिख मंगन के गीत ॥४॥

॥ कवित्त ॥

दाता के द्वार जाय दूर से अशीष देत दीनता दिखाय हाय झूठे गुण गावें हैं। बड़े बड़े पाजिन सों धर्मावतार कहैं बुद्धिहीन मूढ़न कों चातुर बतावें हैं॥ धर्म और अधर्म को विचार नाहिं स्वप्न हू में निशदिन खुशामद की चुटकियां बजावें हैं। लाज हू न लागे वलदेव ऐसे कर्मन से भीख मांगि खावें विप्र देवता कहावें हैं॥ ५ ॥

जय हो यजमान तेरी लज्जा भगवान राखैं दीनता दिखावें भरम आपनो गमावें हैं। बड़े बड़े कुटिल कंजूसन से दाता कहें मिथ्या ही प्रशंसा करें नेक ना लजावें हैं ॥भूलिरहे ईश्वर को मानुष का जन्म पाय दक्षिणा के लालच से हां में हां मिलावें हैं। ऋषि के सन्तान बलदेव ऐसे हैं अजान दर दर में मांगि दान दीनता दिखावें हैं ॥ ६ ॥

मित्रन को प्रेम जात न्याय धर्म नेम जात जप तप की टेम जात आलस में आये ते। बुद्धि को विकाश जात विद्या अभ्यास जात गुरुता को नाश जात दीनता दिखाये ते ॥ कहत बलदेव पुरुषारथ हू छूटि जात धर्म शर्म लूटि जात पूछो क्यों न का हेते । गौरव गुण ज्ञान जात शेखी अरु शान जात शिष्टा सन्मान जात भीख मांगि खाये ते ॥ ७ ॥

॥ दोहा ॥

नर शरीर को पाय के। किया न पर उपकार ।
भीख मांगि भोजन किया। जीवन को धिक्कार ॥ ८ ॥

॥ भजन ॥ ९ ॥

तुम दर दर हाथ पसार के, क्यों अपनी कदर खोते हो ।
तुम्हरे पुरषा थे तपधारी, महा विरक्त जक्त उपकारी ।
भृगु ने लात कृष्ण के मारी, देखो दिल मे विचारि के ।
तुम उन्हीं के सुत पोते हो, क्यों अपनी कदर खोते हो ॥ १ ॥
वेदों को नहीं पढ़ो पढ़ाओ, हवन यज्ञ नहीं करो कराओ ।
निश दिन दान मांगि के खाओ, कर्म धर्म सब हारि के ।
जग में निन्दित होते हो, क्यों अपनी कदर खोते हो ॥ २ ॥
धान्य कुधान्य न देखो भारो, लीन अलीन कछू न विचारो ।
जो कुछ मिले पेट में डारो, कुल मर्य्याद बिगारि के ।

गौरव से हाथ धोते हो, क्यों अपनी क़दर खोते हो ॥ ३ ॥

मांगने से मरजाना भला है, विभचारी से ज़नाना भला है ।
शठ मित्र से दुशमन दाना भला है, बुधजन कहत पुकारके ।
तुम होश में नहीं होते हौ, क्यों अपनी क़दर खोते हो ॥ ४ ॥

दान लेन की रीति नकारा, जिसने विप्रो तुम्हें बिगारे ।
शुभ चिन्तक बलदेव तुम्हारा, कहता है ललकारि के ।
किस नींद में तुम सोते हौ, क्यों अपनी क़दर खोते हौ ॥ ५ ॥

श्रीमान् बाबू भगवानदीन जी (दीन) सेकेण्ड मास्टर हाई स्कूल व सभापति काव्यलता सभा छत्रपूर—बुन्देलखण्ड और वर्त्तमान में सम्पादक " श्रीलक्ष्मी उपदेश लहरी " व " लक्ष्मी " मासिक पत्रिका गया—विहार रचित—

* दान—दूषण *

॥ दोहा ॥

विप्र जनन ते दीन की, अहै विनय यह एक ।
चित दै सुनिये प्रथम तेहि, पुनि मन करिय विवेक ।

॥ नरेन्द्र—छन्द ॥ १ ॥

जगत जनन की सदा भलाई करि के सहित उमंगा ।
परम पूज्य महिसुर जगगुरु की पदवी लही उतंगा ॥
हे ब्राह्मण गण तेई तुम अब देखि परत अति दीना ,
ताके कारण निज मति अनुहर कहत कछुक कवि दीना ॥

(२)

बहुत ग्रंथ देखे मन लाई करि विचार सविवेका ;
ब्राह्मण गण के धर्म्म विलोके तिन महं कठिन अनेका ॥
सर्वोपरि षट धर्म्म विप्र के पढ़व पढ़ाउव वेदा ;
यज्ञ करव करवाउव दानहि देवो लेव अखेदा ॥

(३)

इन ही षट धर्म्मन कहं ब्राह्मण उचित रीति तें पाली ,
पावत रहे ऋषिन की पदवी अरु मन मांझ वहाली ॥
पै अब प्रथम पांच कहँ ताजि कै लेवो सिख्यौ अघाई,
ताही ते तप तेज महातम दीन्हों सवै गंवाई ॥

४

उचित रीति तें दान लेइवो विप्र धर्म्म श्रुति गायो ।
पै कुदान को ग्रहण विप्र हित महा पाप बतरायो ॥
अनुचित उचित विचार त्यागि अरु त्यागि वेद पथ धर्म्मा ।
शर्म्मा पद धारी ब्राह्मण गण बनत जात वे शर्मा ॥

५

सर्व दान को ग्रहण विप्र हित होत उचित यदि भाई ।
जाति भडुरी भाट जगत् महं विधि केहि हेत बनाई ॥
खान रु पान कुदान लेन हित विप्र जगत नहिं जायौ ।
पर उपकार भजन तप कार्जे ईश्वर ताहि पठायौ ॥

६

धर्म्म ध्वजा धारी ब्राह्मण गण देखहु हिये विचारी ।
उपरोहिती कर्म अति मंदा कह्यौ वाशिष्ठ पुकारी ॥
याज्ञवल्क, मनु, व्यास, पराशर निज २ ग्रंथ मंझारी ।
अन अधिकार दान कहं पातक भाष्यौ लेहु निहारी ॥

७

अनुचित दान त्याज्य है सब विधि यामें कछु नहिं वीचा ।
मेरे मत अति उचित दान हू लेत होत नर नीचा ॥
कन्या दान लेत ही वर नर त्यागि वयस कर नेमा ॥
कन्या पितु के पुत्र बराबर पदवी लहत अछेमा ॥

८

शुभ ऋतु पाय नारि रति दानहि लेत स्वपति तें जाई।
गर्भ धारि नव मास कष्ट सहि भार बहत दुख दाई॥
समय गर्भ मोचन पै देखौ सहै पीर कस भारी।
ताते उचितहु दान लेन की सम्मति नहीं हमारी॥

९

नीर लेन हित कोऊ नर जब कूप तीर चलि जावै।
शीश नवावन परै प्रथम तेहि तब कहुं पानी पावै॥
कैसहु बड़ो होय किन कोऊ दाता के ढिग जाई।
लघुता गहै सहै अपमानहिं प्रभुता जाय पराई॥

१०

बलि बावन की कथा पुराणन जेहि प्रकार बतराई।
है सिद्धान्त ताहु को मंगन लहै अमित लघुताई॥
रमा रमण त्रै लोक नाथ हरि जिनते बड़ो न कोई।
दान लेन हित बलि पै आयो बावन तनु धरि सोई॥

११

लंकापति प्रताप बल शाली जेहि जानत सब कोई।
भिक्षा दान लेत सीता पै निज प्रभुता सब खोई॥
जब दधि दान प्रथा नंद नन्दन निज ब्रज माहिं चलाई।
गुलचा सहे अहीर तियन के जग बिच भई हंसाई॥

१२

बड़े बड़न की यह गति जेहिं लै तेहिं के कुशल मनावो।
का मन समुझि आचरत यहि विधि सो सति मोहि बतावो॥
मेरे मत जो मनुष दान हित अपने करहिं बढ़ावै।
सो नर कर बल बुधि दाता कहं मानहुं दोष लगावै॥

१३

ज्यों ज्यों अधिक दान लै कोऊ अपनो विभव बढ़ावै।
त्यौं त्यों होय कुरूप तेज हत अरु अधिगति कहँ जावै॥
जैसे जलद नीर सागर तें ज्यों ज्यों लेत अघाई।
त्यों त्यों होय तामसी रंग को रहै भूमि नियराई॥

१४

ज्योतिषि कहत प्रमाण प्रगट यह दान लेन जो धावै।
पद-पद पै दाता दिश जातन अपनो तेज गंवावै॥
सूर प्रकाश लेन हित चंदा ज्यों ज्यों तेहि दिशि जावै।
कृष्ण पक्ष महं, त्यों त्यों अपनी प्रति दिन कला घटावै॥

१५

लेवो अरु देवो जग जानत अहैं विरोधी काजा।
तिन के फल हू अवशि विरोधी ह्वै हैं हे द्विज राजा॥
देवो दान कुशल कर भाषत वेद पुरान कुराना।
लेवो दान अवशि अकुशल कर मेरे मन अनुमाना॥

१६

कहँ लौं कहौं प्रमाण अनेकन मिलत जगत महँ भाई।
भिक्षा अरु कुदान लेतहिं खन द्विजता जाय नसाई॥
द्रोणा चार्य द्रुपद राजा सों मांगी सुरभी दाना।
लोभी वनिगे देश निकासे लह्यौ अमित अपमाना॥

१७

मानव शास्त्र कहत जो द्विज वर वेद पाठ भल जानें।
होय कुशल द्विज धर्म मांहि अति अरु जग हित मन आनें॥
सो पर पाप भार टारन हित उचित दान कछु लेई।
करि जप यज्ञ मिटाय दोष सो यजमानहिं सुख देई॥

१८

कोउ द्विवेदी त्रैवेदी कोउ चतुर्वेदि कहवावैं ।
जानैं मंत्र संकलप लौं नहिं दान लेन मन लावैं ॥
मिल दश पांच होंय इक ठौरे दाता ढिग चलि जावैं ।
असंतोष युत स्वान सरिस तहं अतिशय कलह मचावैं ॥

(१६)

निन्दित वचन परस्पर भाषैं एकहिं एक प्रचारी ।
कहैं कुवैन कछुक दातहु कहं निज मुख बनैं अनारी ॥
दान प्रथा यहि भांति बिगारैं विप्र समूह अनेका ।
हे ब्राह्मण गण याहि सुधारो करि मन विमल विवेका ॥

(२०)

तजि अभिमान धर्म जप तप को जहं तहं कहैं द्विजेशा ।
लेवो दान, मांगिवो भिक्षा, अहै हमारो पेशा ॥
दीन विनय सुनिये ब्राह्मण गण सर्व वरण के राजा ।
है अति उच्च वैन ये भाषत आवत तुमहिं न लाजा ॥

(२१)

अहंकार सर्वोच्च होन को निशि दिन मन महं धारौ ।
तौ कत परकर तर निज कर कहँ भिक्षा हेत पसारौ ॥
मेरे मत सर्वोच्च सोई नर जो ऊंचों कर राखै ।
नीचो राखि ऊंच बनिवे कहं वृथा कोउ अभिलाषै ॥

(२२)

विद्यारथी, तपी, जोगी, अरु अंगहीन, सविकारा ।
बालक, वृद्ध, तीर्थ पथगामी, भीख लेन अधिकारा ॥
भोजन मात्र एक दिन को लै अधिक न संचै भीखा ।
ऐसो नेम धर्म शास्त्रन महं भिक्षा हित हम दीखा ॥

(२३)

तजि यह नेम भीख जो मांगै सो पातकी कहावै।
भीख मांग धन संचै करई ताहि अधम श्रुतिगावै॥
ताको फल देखो मधु माखी पुष्पन तें रस मांगी।
संचै करै भोग कोउ आनहिं मलै हाथ हत भागी॥

(२४)

सूरज कर फैलाय ग्रीष्म महं लेत सिंधु सों पानी।
संचै करत वायु मंडल महं कहत सकल विज्ञानी॥
ताही फल तें वर्षा ऋतु महं कछुक तेज विनशावै।
कबहुं कबहुं घन पट महं अपनो लज्जित वदन छिपावै॥

२५

ताहू पै नहिं दोष जाय सों दिन प्रति तेज गंवावै।
शरद काल महं तुला राशि गत ह्वै अधगति कहं पावै॥
भिक्षा संचै फल ब्राह्मणगण निरखहु नैन पसारी।
भिक्षा वृत्ति त्यागिये द्विज वर दीन विनय हिय धारी॥

२६

दामोदर प्रसाद शर्म्मा को आयसु निज सिरधारी।
भिक्षादान दूषणी कविता विरची मति अनुहारी॥
ह्वै कायथ विप्रन उपदेशों यह न मोहि अधिकारा।
सेवक ह्वै यह विनय सुनाई करहु नाथ स्वीकारा॥

श्रीमान् बाबू गोविन्द दास जी (दास) जी काव्यलता सभा छत्रपूर बुंदेलखण्ड रचित—

भिक्षा दान निषेध

॥ दोहा ॥

भिक्षा मांगन हार की, रहत जाति नहिं पांत।
तनक कनक के कारनें, घर घर काढ़ै दांत॥ १॥

यातैं भिक्षा वृत्ति तें, भली मँजूरी होय।
इज्ज़त की इज्ज़त रहै, पालन पोषण सोय ॥ २ ॥
मोटे ताजे लोग हू, माँगत द्वारहिं द्वार।
भीख माँगिवो नरन नें, समुझि लीयौ रुज़गार ॥ ३ ॥
ग्रहण किये तें दान के, छोटौ होत महान।
दान ग्रहणही कों भए, वावन श्री भगवान ॥ ४ ॥
भिक्षा को अरु दान को, गृहण न कीजो कोय।
ऐसे निन्दित कर्म सों, मरिवौ नीकौ होय ॥ ५ ॥
जात हटाये द्वार ते, सहते वैन कुवैन।
ताहू पै ये मांगने, भिक्षा वृत्ति तजै न ॥ ६ ॥
भिक्षा ते अरु दान ते, निन्दित कर्म न आन।
दाना दान न लेवहीं, लेवें दान नदान। ॥ ७ ॥
मंगिवौ मैटत मान को, मंगिवौ सब मैं नीच।
जो मंगिवौ नीकौ लगै, तौ किन माँगौ मीच ॥ ८ ॥
शब्द " माँगना " खुद कहै, माँगौ ना तुम भीख।
मंगनन को इतनेहु पै, लगै न तनकहु सीख ॥ ९ ॥
दान छिवैया जान हीं, मिलत मुफ्त में दान।
ये नहिं जानत दान के, वदलैं दीन्हों मान ॥ १० ॥
यातैं लेवो दान को, समुझौ ना आसान।
टाट विछौना किए तव, लिय कैकइ वरदान ॥ ११ ॥
दान लेइवो सहज नहिं, हे मंगन के नाथ।
कैकेई वरदान लहि, पति से धोये हाथ ॥ १२ ॥
ना कछु कीन्हों प्लेग नें, ना कछु कियौ दुकाल।
भिख मंगन के कारनें, भो भारत कंगाल ॥ १३ ॥
ज्योति दान दिन राज सों, लेवै तजि के लाज।

यांही कारण दिवस में, मंद रहै द्विज राज ॥ १४ ॥
गोकुल की गोपीन सों, ग्रहण कियौ दधि दान ।
मेरे मति ता कारनें, कृष्ण कहाये कान्ह ॥ १५ ॥
यारौ हम को एक यह, है आश्चर्य्य महान ।
मांगे हू जे ना लहैं, ते किमि राखें मान ॥ १६ ॥
इक तौ पूरब जनम में, कीन्हे नहिं शुभ काम ।
मांगि मांगि अगलो जनम, अब क्यों करत निकाम॥१७॥
याचक तें हलको कोऊ । दूजौ जग में है न ।
मंगिवे ही के डरन तेहि । वायु उड़ाय सकै न ॥ १८ ॥
सपने नाहिं मति मान को । भिक्षा वृत्ति सुहाय ।
जो है शिक्षा हीन सो । भिक्षा मांगन जाय ॥ १९ ॥
दान लिये तें होत हैं । यारो बुरे हवाल ।
बावन को ता कारनें । बपनों परयौ पताल ॥ २० ॥
याचक गृह गृह मांगि के । दिन भर जितौ लहाय ।
श्रम कीन्हे तातें द्विगुण । अर्द्ध दिवस तक पाय २१ ॥
भिक्षा मांगे नरन के । लगै कमंडलु हाथ ।
ताको तजि जो श्रम करै । होय कमंडलु नाथ ॥ २२ ॥
भिक्षा लेवे तें अहै । मरिवो नीको यार ।
वामें निशि दिन दुःख है । यामें दुख इक वार २३ ॥
दान लेइवौ बड़न की । लाज छुड़ावन हार ।
रमा दान लहि विष्णु हू । परे रहत ससुरार ॥ २४ ॥
ताते दान न लीजिये । जो चाहौ कल्यान ।
दान लीये ते होत है । दुहूं लोक की हान ॥ २५ ॥
दामोदर परसाद को । हुकम दास कवि पाय ।
भिक्षा दान निषेध के । दोहा कहे बनाय ॥ २६ ॥

श्री मान् बाबू मोतीलाल जी (रंग) अहलमद दरबार छत्रपूर रचित—

॥ भिक्षा (ग्रहण) निषेध पंचक ॥

॥ सुमेरु छंद ॥

१

अरे मंगनों ! सुनौं तुम बात मेरी ।
नहीं हालत तुह्मारी जात हेरी ॥
यह क्यों लोटा लिए तुम डोलते हो ॥
"मिलै दाता" ये बानी बोलते हो ॥

२

ज़रा से चून को हौ गिड़ गिड़ाते ।
बनाने वाले को नाहक़ लजाते ॥
नहीं हैं पैर औ कर क्या तुह्मारे ।
जो द्वारों द्वार फिरते मारे मारे ॥

३

जहां जाते वहां धुतकारे जाते ।
कहीं आटा कहीं गारीं हौ पाते ॥
सभी के साह्मने कर जोड़ते हौ ।
मगर आदत नहीं यह छोड़ते हौ ॥

४

अरे ! जागौ ज़रा हुशियार होओ ।
यह जीवन रत्न नाहक़ ही न खोऔ ॥
तजौ तूंबा औ झोरी चीर डारौ ।
ज़रा मरदानगी अपनी निहारौ ॥

कुली बानि जाओ या कमठाने जाओ।
परिश्रम करके दो पैसा कमाओ॥
परिश्रम ही में देखा लाभ सब का।
सिखापन मान लो यह "रंग" कवि का॥

श्रीमान् लाला रामलगन लाल जी (क्षेम) मेम्बर काव्यलता सभा व रोज़नामचा नवीस दरबार छत्रपूर बुंदेलखंड रचित—

✻ भिक्षा ग्रहण निषेध ✻

॥ दोहा ॥

दानरु भिक्षा लेत ही, उच्चपनों विनशाय।
ताही ते कर तासु को, दाता कर तर जाय॥ १॥
पाप भार दातान को, ग्राही पै पर आय।
तौ गरुता ते तासु कर, दाता कर तर जाय॥ २॥
धाम धाम फिरि मांगनो, यह भाषत गुहराय।
भिक्षा ग्राही को कबहुं, मन थिर व्है न सकाय॥ ३॥
करत याचना नर लहै, लघुता भली प्रकार।
बलि पै मांगन हित बने, वामन वपु करतार॥ ४॥
मंगन के चित चखन महं, भिंग रोग ह्वै जाय।
ताते ताहि कुमानसहु, भल मानुष दरसाय॥ ५॥
मंगन में अरु स्वान में, इतो भेद विधि कीन्ह।
स्वान सपूंछ विलोकिये, मंगन पूंछ विहीन॥ ७॥
ईश भजन भुज बल अशन, पर उपकार सप्रेम।
अघ गंजन रंजन सुमन, पर पद दायक "छेम"॥ ७॥

श्री मान् सेठ गुलाबराय जी कैंड़या (गुलाब) सभासद काव्यलता सभा छत्रपूर रचित—

॥ अयाचना पंचक ॥

१

मानगयौ अरु ज्ञान गयौ सनमान जहान रह्यौ नहिं राई।
प्रीति घटी उलटी सब भाषत माखत बाढ़ त्रिया समुदाई॥
सांझ सकारें विचार विहायकैं खाय कैं गारि रहैं सचुपाई।
वैश्य गुलाव हमारें मतें सब तें लघु है जग याचकताई॥

२

पूरव की करनी धरनी सम ताही में तोष करौ चितलाई।
जांचत हौ जन ह्वां जन कों तन को कृश नाहक को दरसाई॥
आज लौं अष्टम अश्वन भानुके गेरत मेरु सदा अतिधाई।
वैश्य गुलाव हमारे मतें सब तें लघु है जग याचक ताई॥

(३)

याचक तूल हु तें लघु है अति बात प्रसिद्ध रही जग छाई।
काहे न वायु उड़ावत है यह संशय दूर करो किन भाई॥
हाय न मो सन मांगि उठे कछु याही सें दूर रहे में भलाई।
वैश्यगुलाव हमारे मतें सब तें लघु है जग याचक ताई॥

(४)

मेघन कौं तन श्याम भयौ पर हेत लयें जल शीस नवाई।
आपुन हेत जु लेत धनें तिनकी मलिनाई कहा कहिजाई॥
नीचन सें निहचे कर मांगत लागत लाज न ऊंच कहाई॥
वैश्य गुलाव हमारे मतें सब तें लघु है जग याचक ताई॥

(५)

जाचक मान चहै तो लहै पर चातक की करनी मन लावै।
श्री घनश्याम विहाय के मीत नहीं जग औरपै चित्त चलावै॥
तोष लहै तन स्वाति की बूंद सों ग्रीषम ताप अनेक नसावै।
वैश्य गुलाव हमारे मते अस याचक को न दरिद्र सतावै॥

श्री मान् बावा कामतादास जी (कामद) सभासद काव्यलता सभा छत्रपूर--बुन्देलखण्ड रचित कविता में से कुछ वाक्य नीचे लिखताहूं--

+ ॥ चौपाई ॥ ×

अहंकार युत जे मति हीना। सदा अलीन दान जिन्हलीना ॥१॥
हत्यादिक अन्न हि जो खाई। गायत्री संध्यादि विहीई ॥२॥
ते युत कुटुम प्रेतपति लोका। निवस अहरानिस भोगत शोका ॥३॥
और अनेक विप्र कलिकेरे। दान हेत लरि मरत घनेरे ॥४॥
दान लेन की निन्दा भाई। सो चारों युगते चलि आई ॥५॥
नीच निसील निलज द्विज जोई। दानहेत मचलत है सोई ॥६॥
अज हू दान लेत जे लोगा। ते सठ विन गायत्री योगा ॥७॥
होत सदा ते नर्क निवासी। यह सब युगयुग रीति प्रकाशी ॥८॥
कहै कहां लग दान निषेदा। (कामद) मूढ़ न जानत भेदा ॥९॥
सब विधिविप्र पूज्य जगमाहीं। निंदितदान भीख तिन काहीं॥१०॥

श्रीमान् सरदार अजीतसिंह जी अपने व्याख्यान में कहतेहैं। कि आप लोग सर्कार के पास विनती करते हैं हाथ जोड़ते हैं और मेमोरियल भेजते हैं, इस से क्या बनता है ? उन लोगोंको धिक्कार है जो 'भिक्षां देहि, की नीति का त्याग नहीं करते अर्थात् धिक्कार है उन लोगों को जो भिक्षा मांगकर अपना काम चलाते हैं देखो हिन्दी केसरी सप्ताहिक पत्र भाग १ संख्या ५ पृष्ठ६ कालम ४ पंक्ति १३ ॥ आगे इसी पत्र के भाग १ संख्या १९ पृष्ट १ कालम १ पंक्ति ३२ से ३६ तक में लिखा है ॥ कि--भीख मांग कर लाये हुऐ अन्न पुष्टिदायक और बलवर्द्धक नहीं होते बल्कि चित्त को क्षुद्र बनाकर धैर्य विनाशक होते हैं ॥

श्री मान्यवर चतुर्वेदी पण्डित दौलतराम जी शर्म्मा प्रधान आर्य्य समाज करहल प्रान्त मैनपुरी ने दान और भिक्षा ग्रहण के निषेध में

जो पत्र लिखा है उसकी भी आप के अवलोकनार्थ यहां लिखे देताहूं

॥ पत्र की प्रति ॥

* ओ३म् *

महा मान्यवर चतुर्वेदी जी दामोदर प्रसाद जी नमस्ते,—अत्र कुशलं तत्रास्तु—कृपा पत्र आया पठन कर अत्यन्त हर्ष प्राप्त हुआ केवल मुझको ही नहीं वरन करहल तथा मैनपुरी निवासी मात्र समस्त सभ्य चतुर्वेदी भ्रातृगणों को—महाशजी ने जो दानके विषय में हम लोगों की सम्मति ली बड़ी कृपा की हम सबकी सम्मति आप के सूचनानुसार पुष्टि करने में तत्पर है—और जो सहायता हम लोगों के योग्य हो उसके करने में हम सब कटिवद्ध हैं—ब्राह्मणों के छः कर्म्म मनु महाराज ने धर्म्म शास्त्र में स्पष्ट रीति से दरशाये हैं—उन में से तीन कर्म्म पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना धर्म्म में और तीन कर्म्म पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना जीविका के हैं परन्तु **प्रतिग्रहः प्रत्यवरः जो दान लेना है वह नीच कर्म्म है** किन्तु पढ़ाके और यज्ञ कराके जीविका करनी किञ्चित् उत्तम है और जो हम लोगों को कुलीन पद प्रदान किया गया है कारण उसका केवल दान त्याग है. अब हम समस्त करहल, मैनपुरी, इटावा, भदावर, फिरोजावाद और आगरा आदि कुलीन चतुर्वेदियों की एक सम्मति है कि **दान लेना नीच किन्तु, नीचतर कर्म्म है** इससे दान लेना उचित नहीं है--और न हम लोग लेते हैं--पत्रोत्तर में जो सेवक से विलम्ब हुआ उसका एक विशेष कारण है आशा है कि आप समस्त महाशय गण अपराध क्षमा कर कृतार्थ करेंगे और पुनः इस विषय की कृपापूर्वक सूचना देंगे ॥

आप दानत्यागी चतुर्वेदियों का

कृपाभिलाशी सेवक दौलतराम शर्म्मा

करहल प्रा० मैनपुरी

पत्र पूर्

और भी सज्जन पुरुषों के कराक्षर हैं। जैसे---

हस्ताक्षर चतुर्वेदी चुन्नीलाल खज़ानची कुलीन मैनपुरी। ह० चतुर्वेदी रामगोपाल शर्म्मा करहल। ह० कृष्ण गोपाल चतुर्वेदी करहल। ह० चतुर्वेदी रामदास श्रोती करहल। ह० चतुर्वेदी लक्ष्मी धर श्रोती करहल। ह० चतुर्वेदी शिवचरण लाल श्रोती करहल। द० वैनीराम चौबे करहल [सराफीमें]। द० चतुर्वेदी बदरी प्रसाद फ़ीरोज़ाबाद (फ़ारसी में)। द० चतुर्वेदी लोकमन जी मैनपुरी। द० दीनानाथ जी चौबे। द० तुलसीराम चतुर्वेदी छिरोरा करहल (सराफ़ी में)। द० राधामोहन जी रईस फ़ीरोज़ाबाद [सराफ़ीमें]।

पत्र पर कोई मिती नहीं है परन्तु पत्र के लिफाफे (कोथली) पर सरकारी मोहर करहल की ता० ५-१२-०१ की और मथुरा की ७-१२-०२ की लगी हुई हैं॥

श्री मान् भगवानदीन श्री आतम, गोड़वा, अतरौली—हरदोई कहते हैं—

॥ * भारत वर्ष के भिखारी * ॥

प्रियवरो! आज हम आप लोगों को कुछ अपने भूखे भारत के भिखारियों का समाचार सुनाना चाहते हैं। सुनाना ही नहीं, किन्तु साथ ही यह भी दिखलाना चाहते हैं कि इन भारत वर्ष के भिखारियों में से कुछ थोड़े दीन दुःखी अन्धे अपाहिजों को छोड़, जितने मुचण्ड भीख मांग मांग कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं उन को किसी न किसी प्रकार की कोई नौकरी मजदूरी आदि पेशा कर लेनेमें क्या हानि है? सो नहीं! हाय! वे लोग यह न करके सम्पूर्ण भारत वर्ष भर को अनेकशः कष्ट पहुंचाते हुए द्वार द्वार भीख मांगते फिरते हैं, जिनके विषय में बहुधा देखा गया है कि इसी भीख ही के भरोसे पर

उनके तमाम कार्य चलते जाते हैं और गौर करने से यह भी साफ विदित हो चुका है कि इन भारत के भिखारियों में से फी सदी दश पांच लूले लंगड़ों तथा अन्धे दीन दुःखियों को छोड़कर शेष नव्वे पचानवे तो निरे मुचण्डे एक दम अपनी सुकुमारता और परिश्रम न करने के ही कारण भीख मांग मांग कर पेट पालन करते हैं। यदि यह कहिये कि दीन तथा असमर्थ होकर ये लोग भीख मांग कर जीवन व्यतीत न करें तो क्या करें ? तब तो इसका उत्तर यही हो सकेगा कि मज़दूरी अथवा नौकरी करके पेट पालन करें तो क्या यह उनके हक़ में बुरा कहा जायगा ? कभी नहीं॥

हाय ! कैसे खेद की बात है। भीख मांग कर जीवन व्यतीत करना क्या लज्जा की बात नहीं है ? देखिये घर में मातापिता अपने बालकों को तथा गुरू अपने शिष्यों पर स्कूल में क्रोध करते हैं तब उनके प्रति कठोर बचनों का प्रयोग करते समय दांत पीस २ कर कहने लगते हैं कि अगर तू सुचाल पर न चलकर कुछ लिखे पढ़ेगा नहीं तो अन्त में भीख मांगता फिरेगा। यह एक प्रकार का ताना मारना कहलाता है बस समझने की बात है कि यदि भीख मांगना नीच से नीच कर्म नहीं है तो क्या है ? जिसमें अपमानादि अनेकशः बुराइयां दृष्टि गोचर होती हैं। हाय ! आज वही फल हमारे प्यारे भारतवर्ष को हाथों हाथ मिलरहा है॥

हाय ! यदि भीख मांगने वाले लोग अपना अपना पेशा अथवा नौकरी मज़दूरी कृषि वाणिज्यादि थोड़ी से थोड़ी पूंजी द्वारा करने लगें और इस घोर निन्दित कर्म = भिक्षाटन को छोड़ घृणा की निगाहों से देखने लगें तो भारतवर्ष हरा भरा क्यों न हो जावे ? लेकिन ऐसा नहीं है। कारण यह है कि जब जिसको बिना परिश्रम पेट भर भोजन करने को मिल जाय तब वह परिश्रम क्यों करें ?

ज़रा आंख झपका कर लज्जा देवी को विसर्जन करने ही से पेट भर मिलता है तो दिन भर परिश्रम करके उमर भर कमाई हुई सुकुमारता को क्यों खोदें ? हाय ! बड़ेही पश्चाताप की बात है। कि जिधर निगाह उठाकर देखो उधर ही चारों तरफ़ से पैसे के लिये कोई कहता है कि रामेश्वर से आते हैं। कोई बद्रीनारायण को जाता है कोई तीर्थवासी बनजाते हैं। कोई रामानन्दी तिलक लगाये अपने आपको सिद्ध बताता है। कोई हाथी पर चढ़ा डंका बजाता है कोई किसी राह में पांव पकड़ कर मुंह में दूब दबाये खड़ा है। कोई उलटा टंगा चौराहे में झूलता है। कोई अपने आप को अमुक देवता का पण्डा पुजारी बताता है। कोई किसी को देखकर वृक्ष पर चढ़कर गिर पड़ने की धमकी देता है। कोई काली भैरवादि का पण्डा बन जाता है। कोई दण्ड धारण किये संन्यासी कहकर कमण्डलु फोड़े डालता है। कोई खंजरी आदि बाजे बजाकर भजन सुनाता है। कोई गंगा जली लिये घूमता है। कोई अपने को महा रङ्क बताता है। कोई धड़ गाड़ कर बैठता है। कोई मूड़ चीर कर दिखाता है। कोई आदमी की खोपड़ी पकड़े घूमता है। कोई गंगा का और-- कोई जमना का पुत्र बना फिरता है। कोई कृष्ण कृष्ण और राम राम रटता रहता है। कोई भंग का पीना, कुश्ती का लड़ना और लड्डुओं का खाना दिखाता है। कोई मिश्री और पेड़ों का प्रसाद लिये घूमता है। कोई तूंबी बजा कर सांप वगैरह बिषैले जानवर दिखाता है। कोई भालू बानरों को नचाता है। तात्पर्य्य यह है कि इसी तरह करोड़ों भारत वासी किसी न किसी बहाने से नाना प्रकार के स्वांग बनाये भारतवर्ष भर को तङ्ग कर रहे हैं। तब कहिये कि यह इन भिखारियों का अत्याचार नहीं है। तो क्या है ?

पाठको ! हम सर्व साधारण जाति के दीन असमर्थ अपाहिज तथा लूले लङ्गड़े और अन्धों की बात नहीं कहते हैं। यदि ऐसे मनुष्यों

का पालन किया जाय तो हम उस को धर्म्म ही कहेंगे, किन्तु उन लोगों के लिये अवश्य कहते हैं कि जो सब प्रकार सामर्थ्य रखते हुए अन्य पेशा मजदूरी विद्या प्रचारादि न करके केवल भीख हीके भरोसे पर बचपन ही से भीख मांग कर अपना जीवन व्यतीत करना सीखलेते हैं। और फिर अपने बच्चों को भी भीख मांगना सिखा देते हैं। ऐसों को बार २ क्या बल्कि हजार बार बरन लाख बार धिक्कार है ॥ देखो श्री वेंकटेश्वर समाचार पत्र बम्बई भाग १२ संख्या २१ पेज ६ कालम ६—७ ॥

नोट—उक्त महाशय ने इन प्रख्यात भिखारियों का तो वर्णन किया किन्तु रोजगारी—भिखारियों का नाम तक न किया। स्यात् आप इन से जानकार न होंगे ॥

श्री मान् कविवर कर्ण (ठाकुर कर्णसिंहजी) ग्राम चेंडोली पोस्ट हरदुआ गंज जिला अलीगढ़ निवासी तारीख २९-११-०४ के पत्र में लिखते हैं कि " वास्तव में ब्राह्मण जैसे उच्च वर्णको भिख-मंग होना लज्जास्पद है " ॥

श्रीमान् पण्डित बद्रीदत्त जी शर्म्मा ग्राम बांकनेर पो० खैर जिला अलीगढ़ निवासी तारीख १५-१२-०४ के अपने पत्र में लिख भेजते हैं कि " वास्तव में ब्राह्मण मात्र के लिये दान त्याग का व्रत अनेक सद्गुणों और मान मर्य्यादा का अलभ्य फल देने वाला है विचार करके देखा जाता है तो आज दिन ऐसा ऐसा भ्रष्ट और निन्दक दान खाते हैं कि उसके दोषों का यदि विधिवत् प्रायश्चित्त भी किया जाय तो भी अंतःकरण की यथावत् शुद्धि कठिन है कहां तक कहें देख कर और सुन कर रोमाञ्च खड़े होते हैं तभी तो आज ब्राह्मण जाति में अनेक प्रकार के दुर्गुण देख पड़ते हैं जिन को देख दूरदर्शी महज्जन पुकार उठते हैं कि त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!! प्रभो! रक्षां कुरु! रक्षां कुरु!!

मैं यह तो नहीं कहता कि दान त्यागी हूं परन्तु मेरा विचार बहुत दिनों से आप के अनुकूल है और अपनी सामर्थ्यानुसार त्याग भी करता हूं भविष्य में विशेष करूंगा,, ॥

श्री मान्वर पण्डित गणेशप्रसाद जी शर्म्मा सम्पादक भारत सुदशा प्रवर्तक फर्रुखाबाद, जिन्होंने बहुतसे पुस्तक रचे हैं, कहतेहैं। कि--आज कल भारत में भिखारियों की संख्या बहुत है। ये भिखारी भी अकाल का कारण हैं। प्रजाके बीच दरिद्र फैलाने का हेतु हैं। राजा को भी इन से कुछ लाभ नहीं होता। यदि वे खेती के काम पर लगा दिये जांय तो आप सुखी रहें, प्रजा का धन बढ़े और राज कोष की वृद्धि हो। शोक ! शोक !! वह देश क्या सम्हले जहां भिखारी अधिक हों अथवा साधु संन्यासी निरक्षर हों। देखो "ब्राह्मण को भिक्षा निषेध,, नाम पुस्तक पृष्टि ७ पंक्ति १८

इसी कारण स्मृतिकारों ने केवल विद्यार्थी और संन्यासी को भिक्षा का नियम रक्खा था, गृहस्थ के लिये नहीं। गृहस्थ को तो सदा श्रमजीवी होना बतलाया है। जो मांग कर दूसरे की कमाई खाता है वह अपाहिज है। मांग कर खाना दूसरे का स्वत्व और भाग लेकर अपना पेट भरना है और दाता के श्रमको व्यर्थ करना है इस कारण भिक्षा गृहस्थ के योग्य नहीं। भिक्षुक का मन सदा नीचा और कमीना रहता है। भिक्षुक उच्च भावों और विचारों से सदा दूर रहता है। देखो उक्त पुस्तक पृ० ८ पं० २३

शोक कि शास्त्र में इन वचनों के होते हुए इस समय अनेक ब्राह्मण अपने कर्तव्यों को छोड़ केवल भिक्षोपजीवी हो रहे हैं विना बुलाये विवाहादि कार्य्यों में पर घर जाते हैं। भूर की बटनई में धक्के खाते हैं। इसी से उनके विचार बहुत मन्द और निस्तेज हो रहे हैं। अरे भीख मांगने वाले ब्राह्मणो ! अब तनक सावधान होकर अपने

पूर्वजों के आचरणों पर एक दृष्टि तो दो । देखो, आप उसी वंश में हैं जिसमें विप्रवर परशुराम हुए हैं जिन्हों ने २१ बार धरती जीतकर क्षत्रियों को देदी । आप उसी ब्रह्ममण्डली में हैं जिसमें द्रोणाचार्य्य और कृपाचार्य्य हुए थे जिनका कथन यह है । कि—

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः ।
द्वाभ्यामपि समर्थोऽस्मि शास्त्रादपि शरादपि ॥

अर्थ—चारों वेद मेरे आगे हैं अर्थात् हृदिस्थ हैं और धनुष वाण पीठ पर हैं । शास्त्र और शस्त्र दोनों से मैं समर्थ हूं ॥

अरे अपने महत्व को भूलकर भिक्षा मांगने और लेने वाले ब्राह्मणो ! आप उसी वंश के अवतंश हो जिसमें शिल्हन मिश्र हुए हैं जो मांगने की अपेक्षा मरना अच्छा समझते थे, जिनका सिद्धान्त यह वचन है । देखो इसी पुस्तकके २६ वेंपृष्ट का चौथा श्लोक ॥ देखो वही उक्त पुस्तक पृ० १० पं० २३ ॥

आगे चल कर उक्त पण्डित जी पुनः लिखते हैं । कि शोक ! उन्हीं ऋषियों की सन्तान आज घण्टी में जल और पुष्प डाल अनाहत आशीर्वाद देने जाती है । मृगतृष्णा के समान पेट के लिये भटक रही है और अपने को भिक्षावृत्ति कहते लज्जित नहीं होती ! एक समय ब्राह्मणों का वह था जो शूद्र के धान्य से बड़ी घृणा करते थे । हाय ! एक दिन अब यह है जो धर्म्म स्थानों में बैठ कर श्रद्धा हीन दूर से फेंकने वालों का पैसा गुपकते हैं । जाति और वंश का गौरव छोड़ मुट्ठी भर अन्न दांत से उठाते हैं । दिन २ अपना तप, स्वाध्याय और ब्रह्मतेज नष्ट कर रहे हैं । लोगों की दृष्टि में अपने तईंको गिरा रहे हैं । प्रियवर ! यदि दान लिये बिना काम नहीं चलता तो विद्या और यज्ञादि के द्वारा षटकर्मी होकर शास्त्रोक्त दान लीजिये । निषिद्धान्न और भिक्षा को तिलांजली दीजिये । देखो श्री

वाशिष्ठ जी महाराज अपनी स्मृति में कहते हैं—

सर्वत्र दान्ताः श्रुतिपूर्ण कर्णा जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृताः।
प्रतिग्रहे संकुचिता ग्रहस्ताः तेब्राह्मणास्तार यितुं समर्थाः ॥

अर्थ—मन और इन्द्रियों को वश में किये हिंसा रहित वेद पाठ से जिनके कान भर रहे हैं और दान लेने में संकोच करते हैं ऐसे ब्राह्मण जगत को तारने में समर्थ होते हैं ॥ देखो उसी पुस्तक का पृ० १२ पं० १४ ॥

श्री मनु महाराज ने तो भीख मांगने को मरी हुई जीविका बताया है। यथा—मृतंतु याचितं भैक्षम् ॥

श्री मुनिवर चाणक्य जी महाराज ने भी भिक्षावृत्ति = भीख मांग कर आजीविका करने को बुरा कहा है। यथा—

वाणिज्ये वसते लक्ष्मी स्तदर्धं कृपिकर्मणि ।
तदर्धं राजसेवायां भिक्षायां नैवच नैवच ॥

॥ भावार्थ=चौपाई ॥

मध्यम खेती उत्तम बान ।
निर्धन सेवा भीख निदान ॥

नोट—बान के अर्थ वणिज=व्यापार ।

" मारिबो क़बूल पै न मांगिबो क़बूल है "
की समस्या पर

॥ * कवित्त * ॥

श्री मान् वर चातुर्वेदी पण्डित श्री श्यामलाल जी शर्म्मा कवीश्वर राज्य सवाई जयपुर—राजपूताना रचित—

जैसे नीति वानन कौ लाभ मूढ़ संगही तै हान ही क़बूल पै न संगबो क़बूल है। जैसे शूर वीरन कौ समर मही में शस्त्र सहिबो क़बूल पै न हगबो क़बूल है ॥ जैसे सती नारि ही को

पति की चिता में बैठि जरवो क़बूलपै न भगवौ क़बूल है। ऐसे कवि श्याम कहैं माथुर कुलीनन कौ मरिवो क़बूल पै न मंगवो क़बूल है॥

श्रीमान्वर कवि कर्णसिंह जी वर्म्मा ग्राम चँडौली पोस्ट हरदुआ गंज ज़िला अलीगढ़ निवासी रचित—

आज द्विजराजों की निहारौ करतूति प्यार,
शोक इन कीरति पै डारि दई धूल है ।
छोड़ी गैल गौरव की भीख में लगायौ चित्त,
विद्याके विरोधी भये ऐसी करी भूल है ॥
सज्जन विचार शील होकर विचारें नहीं,
इनकी समझ हाय कैसी प्रतिकूल है ।
कहैं कवि किंकर करण द्विज वनिके तौ,
मरिवौ क़बूल पै न मांगिवौ क़बूल है ॥२॥
करिये विचार कछु बैठ गुरु लोगन में,
भीख की न रोटी पर पड़े अनुकूल है ।
ऐसे पोच कर्म्म को विसारौ विन वार प्यारे,
लाज जाय मान जाय कीरति की धूल है ॥
विप्र कुल मांहि जन्म उत्तम वतावें सब,
पढ़ौ वेद विद्या जो महान सुख मूल है ।
गौरव के गिरि पै चढ़े न क्यो तौ कर्ण कहै,
मरिवौ क़बूल पै न मांगिवौ क़बूल है ॥३॥

श्री मान्वर कवि विक्रमासिंह जी गौड़ वर्म्मा ग्राम वनकोटा पोस्ट वज़ीर गंज ज़िला वदायूं निवासी रचित—

याचना में देखौ हम द्वार द्वार घूमनो याचक से दाता हू बोलत प्रतिकूल है। प्रीति सन्मान से न पास को बुलावै कोऊ मान और प्रतिष्ठा पर जाति परि धूक है॥ सबसे घिघियाने

परत दीन वचन कहने परत निलज्जता अगौरव को मंगनही मूल है। विक्रम कवि पेट बांधि बैठिरहौं लंघन से मरिवौ कबूल पै न मांगिवो कबूल है॥ ४ ॥

श्री मानवर कवि चतुरवेदी पण्डित श्री राधा कृष्ण जी शर्म्मा ग्राम पारना पोस्ट कचौरा ज़िला आगरा रचित—

शील और संकोच सब ताही क्षण दूर होत चूर होत गौरव ज्यों अग्नि लगे तूल है। राजा महाराजा बादशाह क्यों न कोऊ होहु मांगते समैही छाड़े जात मुख धूल है॥ छांड़ि पुरुषारथ प्रतिग्रह की राखैं आस याहू तें अधिक कौन और तेरी भूल है। राधाकृष्ण माथुर विचार वार वार कहै मरिवौ कबूल पै न मांगिवौ कबूल है॥५॥ मात होत दाता और अदातन के ताके मुख मानसी अमूल वस्तु जानत फ़जूल है। सन्ध्या होम बलि वैश्य इन को न जानें नाम गांम धाम छांड़ि कौड़ी करत हसूल है॥ अब तौ सचेत होहु स्वामी जी जगाय गये सत्य व्रत धारौ यह वैदिक उसूल है। ऐसौ तुच्छ कर्म पेखि राधाकृष्ण ग्लानि होत मरिवौ कबूल पै न मांगिवो कबूलहै॥६॥

श्री मान् मुन्शी हाजी अलीखां जी सौदागर स्थान दमोह रचित्—

व्याकुल शरीर और रोम २ पीर होय राखों कहा धीर यार उठत हिये हूल है। तन है सुखात वात कहत जबै नाहीं की पाछे पछतात वहुरि होवत मलूल है॥ डूवत है नाम यार है यह निकाम काम हाजी यह मुदाम जान पापन को मूल है। तन में हो फूल कहा सुनत चुभत शूल हिये मांगेंगे भूल नाहिं मरिवौ कबूल है॥ ७॥

॥ फुटकर—कविता ॥

दान और भिक्षा (ग्रहण) निषेध पर मैं अब उन कवीश्वरों

की की हुई कविता लिख सुनाता हूं, जिन महान् पुरुषों के सुनाम मैं नहीं जानता। यह निम्न लिखित कविता मैंने अच्छे अच्छे पुस्तकों में से चुन कर ली हैं ॥

॥ लघु—वाक्य ॥

मीत जात मीत जात बार बार मांगे ते ॥ १ ॥
मांगन की हलुकाई, सबहीनें बखानी है ॥ २ ॥
याचक लघु पद कहै ॥ ३ ॥
धिक मंगन बिन गुणहिं ॥ ४ ॥
प्रीत जात मीत ते सुनीत कछु मांगे ते ॥ ५ ॥

॥ * अर्ध—दोहा * ॥

जे नर मांगत भीख को। ते नर महा अचेत ॥ ६ ॥
तृण लघु ताते तूल लघु। ताहि ते याचक जोय ॥ ७ ॥
मांगन गये सो मरि रहे। मरे सो मांगन जाहिं ॥ ८ ॥
बुरो मांगिवो जगत में। जाते हो अपमान ॥ ९ ॥

॥ सवैया—खण्ड ॥

नर से जनि देहु रे देहु कहौ। अब देहै वही जिन देह दई है ॥ १० ॥

॥ अर्ध—दोहा ॥

रहिमन वे नर मर चुके। जे कहुं मांगन जांय ॥ ११ ॥
भिक्षा वृत्ति विहाय। दीन वाणी तजि दीजे ॥ १२ ॥

॥ दोहा ॥

मांगन मरन समान है। मांग मान मत खोय।
तेल न मांगो हे सखा। रहो अंधेरे सोय ॥ १३ ॥

याचन बुरी बलाय है। या में चित मति लाय।
तनक कनक के कारने। मान छीन व्है जाय ॥ १४ ॥

सब ते लघु है मांगिवो। या में फेर न सार।
बलि पै याचत ही भये। वावन तन करतार ॥ १५ ॥

मांगत हीं में बड़ेन को। लघुता होत अनूप।
बलि मख याचत ही धरे। श्रीपति हू लघु रूप ॥ १६ ॥
तृण से है रूई हलुकि। ताते याचक जानि।
पवन उड़ावत क्यों नहीं। हमसे मांगहि आनि ॥ १७ ॥
लखि दरिद्र को दूरि तें। लोग करैं अपमान।
जाचक जन ज्यों देखि कै। भूकतहैं बहु स्वान ॥ १८ ॥
काचे घट में जल यथा। श्रवित होत अति जाय।
याचक को कुल शील गुण। विद्या तथा घटाय ॥ १९ ॥
तब लग ही गुण गौरता। जब लग कहै न देय।
देय कहे ते खेह सब। गुण गौरव पिट देय ॥ २० ॥
फटी गूदड़ी ओढ़ के। सूखी रोटी खान।
श्रम करिके दुःख झेलिबो। भलो,न जग इहसान ॥ २१ ॥
करि सन्तोष भलो सियन। गुदड़ी टूक बटोरि।
भलो न मांगन धनिन सों। वस्त्र हाथ पुनि जोरि ॥ २२ ॥
राम दुहाई जानिये। वाको नरक समान।
आन काहु के पुण्य बल। करन स्वर्ग प्रस्थान ॥ २३ ॥

॥ * चौपाई * ॥

जो औरन सन याचन करई। तन से बढ़े चित्त से मरई ॥ २४ ॥
धनी प्रधान भूप के द्वारे। कबहुं जाहु जनि भीख सहारे ॥ २५ ॥
द्वारपाल कूकुर लखि याचक। आंचर गहे धरै गरदन एक ॥ २६ ॥
जिन मांगन हित हाथ पसारा। रहे सदा कंगाल वेचारा ॥ २७ ॥

॥ दोहा ॥

मांगन मरन समान है। मत मांगो कुइ भीख।
मांगन से मरना भला। यह सत गुरुकी सीख ॥ २८ ॥
आव गई आदर गया। नैनन गया सनेय।

ये तीनों तबही गये । जबहिं कहा कछु देय ॥ २९ ॥
सूखी रोटी है भली । टहल किये जो पाव ।
दानी के पकवान पै । नहिं चित कबहु चलाव ॥ ३० ॥
रहिमन कहैं पुकार कै । सुनौ हमारी बात ।
जो खांहिं भीख मांग कै । तिनके मारो लात ॥ ३१ ॥
जो रहीम दर दर फिरैं । मांग मांग अन खांहि ।
भाई ऐसे जनन सों । सब सदैव अनखांहि ॥ ३२ ॥

॥ चौपाई ३३-३४ ॥

भूखे रहो सहो दुःख निज तन । पै जनि जाउ काउ गृह मांगन ॥
निज श्रम सन जो खाय कमाय । सो क्यों औरन सों घिघियाय ॥

॥ सवैया-३५ ॥

सेवा जो लेत महत्तहिं छीनि बुढ़ापी है रूपहिं देत बिगारी ।
चाननि दूर करै अधिकारहिं राम के नाम जो पापनि जारी ॥
क्रोध भगाइ जो देत विवेकहिं लोभ भगावत सत्यं विचारी ।
तैसेहि मांगन रीति अहै सब गुण हरैं जग देत है तारी ॥

॥ अन्यच-३६ ॥

सेवा समान हरै जो महत्तहिं, चन्द्र समान हरै तमकारी ।
बुढ़ापा समान नसै तनभा, नाम समानहिं पाप प्रचारी ॥
मांगन नाश करै सगरे गुण, जाते लहैं नर आदर भारी ।
आशि लहैगी अनादर सोनर, जांचत जाइ जोई परवारी ॥

॥ मदिरा छन्द-३७ ॥

सेवत मान नसाय सबै जिमि चांदिनि तें तम जैस टरै ।
सुन्दरता सब मानुष की जिमि देख बुढ़ाइ न देखि परै ॥
केशव शंकर केरि कथा जिमि पातक पुंज विनाश करै ।
नाथ भले गुण त्यों सबही मंगिवो जहु एक तुरन्त हरै ॥

॥ दोहा ॥

भीख सरिस अवगुन नहीं, तप नहिं सत्य समान ।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम, विद्या सम धन जान ॥३८॥

॥ सवैया ३९ ॥

दैव दये फल फूल अनेक औ मूल जिते तित ताहि अहारै।
डास न को कुसलै परभूमि चहै जितही तित पांय पसारै ॥
ताल तरंगिन ताप हरै अरु सूरज पावक शीत निवारै।
याके लिये हाठिकै शठ तू कहै पांवर पांरन हाथ पसारै ॥

॥ कवित्त ४० ॥

साध और संतन को गुनी और महन्तन को,
जौलों जीव जीवे तौलों जीविका हू चाइये ।
भूख लगे प्यास लगे काम क्रोध लोभ,
मो पै तौ न मिटे नाथ मैटे तौ मिटाइये ॥
कैं तो कछू कृत दीजे नाहीं तौ मृतु दीजे ;
दीजे दृढ़ भक्ति मेरो चित्त न चलाइये ।
हरि को पुकारी हूं का पे भीख मागों जाय,
यही पुकार करूं मोपे भीख न मंगाइये ॥

॥ दोहा ॥

या दुनियां में आय के, मत लेवे तू भीख ।
भीख बराबर दुःख नहीं, यही जान जिय सीख ॥ ४१ ॥
रीती थोथी बात कर, वृथा भीख मत मंग ।
दान भीख को लेइवो, करत मान को भंग ॥ ४२ ॥
भीख पाप को मूल है, भीख मिटावत मान ।
भीख कभी नहिं मांगिये, जा में नरक निदान ॥ ४३ ॥

॥ चौपाई-४४ ॥

भूखे रहो सहो दुःख निज तन, पै जानि जाउ काउ गृह मांगन ॥

क्योंकि

भिक्षामें अपमानहि पावो,श्री ह्री धी धी कीर्ति गंवावो॥४५॥

कहुं रे सहि हो वचन कठोरा,द्वेष भाव मनिहै मनतोरा॥४६॥

ताते भिक्षा नीचहि जानो,ताहि त्यागि ऊंची मति ठानो॥४७॥

॥कबीर-४८॥

छोड़ो मेरे प्यारे भाई, भीख लेन दुःख रूप ।
देशी शिल्प बढ़ाओ खेती, यह तुमरे अनुरूप ॥
भला सुख सम्पति इससे ही मिलि है ॥

॥ चुटकला ४९-५० ॥

सुख चाहो तो छोड़ो भीख, दुःख चाहो तो लेवो भीख ॥
सोचो विचारो और छोड़ो अभी से ।
लेना नहीं दान जायज़ कभी से ॥

॥ कवित्त ५१-५२ ॥

ऋषि कुल मृयाद देखो कैसे दानत्यागी रहे ताकी पताका विश्व विदित एक धर्म है । स्वाधिन पेखो जिन मूल काटि जरजरकियो अन्यदेशी आइवे को यही एक मर्म है ॥ अबहू विचारो सब मान मिल धूकगयो दामोदर विनै सुनो हिये कछु शर्म है । जन्म जिन पाय द्विजवंश सिर मौर हाय भीख सी मलीन वृत्ति ठानो निज कर्म है ॥ १ ॥

सर्व सिरमौर देश भारत भूमंडल पै कैसे सूरवीर भये या में अधिकारी है । वीरता तपस्या दोनों सम जिन जानी तात द्रोण से प्रवीण पर्सराम बलधारी है ॥ सर्व भूमि जीति जिन क्षत्रिनि अकस कीन्हों दान नहीं लीनों पायो नाम सृष्टि सारी

है । सुनो भूमिदेव द्विज देव विनै दामोदर तुम भीख मांगि कियो भारत भिखारी है ॥ २ ॥

देखो ना भिखारी मित्र पौत्र औ कुपात्र दान धान औ कुधान लेत छोड़ि सवज्ञान कौं । निज मन अधीर होइ करत अरम्भ काज बिन तुक ताल ही अलापतजु तान कौं ॥ निज मन लजावै त्यों खिजावै मन औरन को स्वारथ न पावै औ गमावै गुरू मान कौं । दिने दिन नशावै कूर कायर बनावै हठि दामोदर बतावै प्रिय तजो ऐहि बान कौं ॥ ३ ॥

यह उक्त तीनों कवित्त दीवान श्री चेतसिंह जी महाशय रईस पारना पोस्ट कचौरा ज़िला आगरा के बनाये हुए हैं ॥

अपना मान (गौरव) रखने वाले मनुष्यों को निम्न लिखित वाक्य सदैव स्मरण रख कदापि किसी से याचना न करना चाहिये क्योंकि याचक-भिक्षा ग्रहण करने वाले का कभी कोई मान (प्रतिष्ठा) नहीं करता । यथा— ॥ लघु-वाक्य ॥

मान जात मांगेतें ॥ १ ॥
मांगिवे तें मान जात ॥ २ ॥
मान घटे जबही कछु मांगहु ॥ ३ ॥
मान त्यागे मंगन ॥ ४ ॥
मांगत मांगत मान घटे ॥ ५ ॥
मान जात तुरतहि बार २ मांगेतें ॥ ६ ॥
महान मान नष्ट होत मांगेतें ॥ ७ ॥
मान घटे कछु मांगन तें ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

मान धनी नर नीच पै । यांचै नाहि न जाय ।
कबहुं न मांगे स्यार पै । बंकि भूखो मृगराय ॥ १ ॥

॥ सोरठा ॥

मरण दुःख पल एक। मान भंग दिन दिन दुखी।
मानि त्यागिबो नेक। नहीं मान पर खण्डना॥ १०॥

॥ दोहा ॥

भले भई घर ते छुटो। हस्यो शीस परि खेत।
काके काके नवत हम। अपत पेट के हेत॥ ११॥
नहिं गर्वी धन वान को। तथा सुखद पकवान।
वन में कटु फल खायके, सन्तोषहि सुखमान॥ १२॥
भूमि शयन वल्कल वसन, फल भोजन जल पान।
धन मद माते नरन को, कौन सहै अपमान॥ १३॥
है अधीन जांचहिं नहीं, भीख मांगि नहिं लेहिं।
ऐसे मानी मांग नहीं, को वारिद बिनु देहिं॥ १४॥
पेट भरें अपमान सहि, मुख की शोभा जाय।
तन दुख सहि जो धृति गहें, नित नित श्रीअधिकाय॥ १५॥
बहुधा लज्जित होत हैं, जे पेटारथि लोग।
उदर दुःख सहिबो भलो, पर नहिं मंगबो योग॥ १६॥
जो रहीम कोटिन मिलै, धृग जीवन जग माहिं।
आदर घटो नरेश ढिग, बसे रहे कछु नाहिं॥ १७॥
धिक सो अन्न जेहि लहनमें, मन में भई गलानि।
हांड़ी यद्यपि चढ़ि गई, भई मान की हानि ॥ १८॥

॥ सोरठा ॥

दयो जु अन्न बढ़ाय, आदर मेरो घटि गयो।
सो नहिं मोहि सुहाय, बिना अन्न रहवो भलो ॥ १९॥

॥ दोहा ॥

ऊंची जात पपीहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याञ्चे घनश्याम सों, कै दुःख सहै शरीर ॥ २०॥

उपल बरषि, गरजत तरजि, डारत कुलिश कठोर ।
चितव कि चातक जलद तजि, कबहुं आनकी ओर ॥२१॥

॥ मत्तगयन्द छन्द—२२ ॥

द्रव्य न गर्व भयो कहि को विषयी जनको दुख पावत नाहीं ।
काकर चित्त न नारि चलावति को प्रियहै पृथवी पति काहीं ॥
दुष्ट प्रपञ्च में को परिकै नर बैठि न एक दिना पछिताहीं ।
काल के फन्दन कौन परो अरु मान लह्यो केहि मांगन माहीं ॥
उत्तर—कोई नहीं ॥

॥ सवैया-२३ ॥

राज घटै नृप नीति विना धन नाश तबै जो बिषै रस छाये ।
काज नसै करतव्य बिना अरु सैन नसै बिनु नायक पाये ॥
पाप घटै हरि नाम जपै जब रोग घटै कछु औषध खाये ।
ज्ञान घटै जो कुसंग रहै अरु मान घटै कछु मांगन जाये ॥

॥ सोरठा—२४ ॥

रहिमन हमें न सुहाय, अमिय पियावत मान बिन ।
जो विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥

॥ दोहा—२५ ॥

तुलसी कहत पुकार के, सुनों सकल दै कान ।
हेम दान गज दान ते, बड़ो दान सन्मान ॥

॥ छप्पै—२६ ॥

गई भूमि फिरि मिलै बेलि फिर मिलै जरे ते ।
फल टूटे फल लगे फूल फुलवार झरे ते ॥
केशव विद्या बिकट निकट बिसरे फिरि आवै ।
फेरि होइ धन धर्म्म गई सम्पति फिरि पावै ॥
फिरि होय स्वभाव स्वशील मत वेद धर्म्म यश गाइये ।
प्राण गये पुनि पुनि मिलै पति गे पति नहिं पाइये ॥

॥ दोहा–२७ ॥

तन धन हूं दै मान कै, यतन करत जे धीर ।
टूक टूक ह्वै गिरत पै, नाहिं मुख मोरत वीर ॥

॥ चौपाई २८ ॥

नीचन सन विनती करि मांगत । लाभहु भये तेज तन त्यागत॥

॥ दोहा–२९, ३० ॥

मान समेत प्रसन्न मन, इन्द्रायन फल खाय ।
सो नीको विन मान पै, मोदक नाहिं सुहाय ॥
केवल धन चाहत अधम, मध्यम धन अरु मान ।
उत्तम चाहत मान ही, समुझि सिद्धि की खान ॥

॥ भजन–३१ ॥

तू पाठक, क्यों अपमान सहै ॥ टेक ॥
जे नर धनके मदमाते हैं तिनसों कहा चहै, निष्ठुर वचन बोलि हैं जांचत जासों देह दहै ॥ १ ॥ भूमि बिछावन वल्कल ओढ़न याको क्यों न गहै, फल भोजन जल पान करन को नदिया मांहि बहै ॥ २ ॥ सुन्दर कविता परम द्रव्य है जो नित साथ रहै। भला तोहि को क्या चहिये अब मोसन क्यों न कहै॥३॥ एक विचार ठीक करके तू जो इक ठांव रहै, पाठक रामस्वरूप तहां ही परमानन्द लहै ॥ ४ ॥

नोट॥ अरे मंगनो ! भीख मांगकर अपना मान मत खोओ ॥

जो सज्जन धर्मात्मा मनुष्य होते हैं वह आपत्ति (निर्धनता) के समय में भी धन के हेतु अपने धर्म्म को नहीं त्यागते अर्थात् दान अरु भिक्षा ग्रहण नहीं करते ॥ जैसे—

॥ दोहा ॥

खग मच्छी मृगराज वन, भूखे तृण न चरंत ।
त्यू कुलवंत विपत्ति परै, नीच कर्म्म न करंत ॥ १ ॥

पीवै नीर न सर भरो, बूंद स्वाति की आस।
केहरि तृण नहिं चरि सके, जो व्रत करे पचास ॥ २ ॥

॥ चौपाई ॥

कूकुर जूठा सिंह न खाय।
वरु निज मानहिं में मरिजाय ॥ ३ ॥

॥ दोहा ॥

बड़े कष्ट हू में पड़े, करें उचित ही काज।
स्यार निकट तजि खोजिकें, सिंह हनै गजराज ॥ ४ ॥
करै न कबहूं साहसी, दीन हीन जो काज।
भूख सहै पर घास को, नाहिं भखै मृगराज ॥ ५ ॥

॥ सवैया ॥

बोंधिन में बसिके न मिले सुख जे मुकतान पै चोंच चलैया।
मालति के लतिका बसिके अस नाहिं करील कि कोटि कलैया॥
तू महराज सरोवर हौ हम हंस हमेस यहां के बसैया।
काल कराल परे कितनो पै मराल न ताकत तुच्छ तलैया॥ ६ ॥

॥ कुंडलिया ॥

मांगत नांहि न दुष्ट सों लेत मित्र को नांहि।
प्रीति निबाहत विपद में न्याय वृत्ति मन मांहि॥
न्याय वृत्ति मन मांहि उच्चपद प्यारो जिनको।
प्राणन हूं के जात अकृत नहिं भावत तिनको॥
खड्गधार व्रत धार रहे कोहू नाहिं त्यागैं।
संतन को यह मंत्र दियो कौनें बिन मांगैं ॥ ७ ॥
नाहर भूखो उदर कृश वृद्ध वयस तन क्षीण।
शिथिल प्राण अति कष्ट सों चालिबे ही में लीन॥
चलिबेही में लीन तऊ साहस नहिं छाड़े।

मद गज कुम्भ विदार मांस भक्षण मन ओड़ ॥
मृग पति भूखौ घास पुरानौ खात न जाहर ।
अभिमानिन में मुख्य शिरोमणि सोहत नाहर ॥८॥
कूकर सूखे हाड़ सों मानत है मन मोद ।
सिंह चलावत हाथ नहिं गीदड़ आये गोद ॥
गीदड़ आये गोद आंख हू नांहिं उघारै ।
महा मत्त गज देख दौर के कुम्भ विदारै ॥
ऐसे ही नर खरे बड़ी कृत करत हुहूं कर ।
करें नीचता नीच कूर कुत्सित ज्यों कूकर ॥ ९ ॥

नोट—अरे भिखमंगो ! क्या ऐसे वाक्यों को सुनकर भी अपने धर्म नष्ट होनेका कुछ विचार न करोगे ? अर्थात् क्या अब भी भीख मांगने से हाथ न समेटोगे ?

जो मनुष्य आलस्य के वशीभूत होकर परिश्रम करके धनोपार्जन नहीं करते और दान अरु भिक्षा मिलने की आस पर बैठे हुए सम्पत्ति सम्बन्धी दुःख सहा करते हैं उनको निम्न वाक्यों पर अवश्य ध्यान धरना चाहिये ॥

॥ दोहा ॥

उद्यम कबहुं न छांड़िये, पर आशा के मोद ।
गागरि कैसे फोरिये, उनयो देखि पयोद ॥ १ ॥
श्रम करि वस्तु मिलै भली, बिन श्रम मिलै न आहि ।
ज्यों स्वपने धन तिय लहै, जागे निरफल जाहि ॥ २ ॥

हाथ का नीचा करना अर्थात् दान और भीख का ग्रहण करना बड़ा बुरा काम है । देखिये—

हाथ ही के नीचा करने से विष्णु भगवान को, जोकि त्रिलोकी के नाथ थे, राजा बलि का पौरिया बनना पड़ा था ॥

हाथ ही के नीचा करने से श्रीकृष्ण चन्द्र जी को, जोकि सोलह कला परिपूर्ण ईश्वर थे, ब्रजकी अहीरियों के गुलचे और चोवों के चुलचे=कुवाच्य सहने पड़ेथे । इत्यादि ॥

बस इसीलिये गोसांई तुलसीदास जी ने कहा है—

तुलसी कर पर कर करैं, कर तर कर न करैं ।
जा दिन कर तर कर करैं, ता दिन मरन करैं ॥ १ ॥

इसी प्रकार बाबा रामदास जी अयोध्या निवासी ने कहा है—

मन तुम कर पर कर करो, कर तर कर न करो ।
जा दिन कर तर कर करो, ता दिन मरन करो ॥ २ ॥

इसी आशय को लेते हुए श्रीमान् कविवर क्षेम जी, जोकि सं० १७५९ में हुए थे, कहगये हैं—

ऊंचो कर करै ताहि ऊंचो करतार करै ।
नीचो कर करै ताहि नीचो करतार करै ॥ ३ ॥

इसी भांति श्रीमान् बाबू भगवानदीन जी सम्पादक लक्ष्मी मासिक पत्रिका गया-विहार कहते हैं—

॥ नरेन्द्र-छन्द ॥

अहंकार सर्वोच्च होन को निशिदिन मन महँ धारौ ।
तौ कत परकर तर निज कर कहं भिक्षा हेत पसारौ ॥
मेरे मत सर्वोच्च सोई नर जो ऊंचो कर राखै ।
नीचो राखि ऊंच बनिबे कहं वृथा कोऊ अभिलाषै ॥ ४ ॥

अब इसी अभिप्राय पर श्री मान् पीताम्बरलाल जी आर्य्य सहसवान ज़िला बदायूं निवासी ने निम्न लिखित कविता रची है ॥

॥ लावनी ५ ॥

टेक--फिरो कनिक हेत जा घर घर काढ़ै बतीसी ।
दुरवचन सहत चाखत डोलत लपसी सी ॥

॥ चौक १ ॥

है तुलसी दास का वाक्य करौ कर कर पर।
ना कर को करियो कभी भूल कोई कर तर ॥
है कर तर कर करने से मरना बिहतर।
फिर क्यों नहीं करको समेट बैठो घर पर॥
पढ़ो वेद ईश्वरी ज्ञान प्रतिष्ठा पाओ।
दुनियां भर के तुम पूज्य गुरू कहलाओ॥
मत फिरो बनाये सूरत घर घर हवसीसी।
दुरवचन सहत चाखत डोलत लपसीसी॥

॥ चौक २ ॥

नहीं तुम्हें मुनासिब भीख मांग कर खाना।
तज पौरुष भिक्षा हेत हाथ फैलाना ॥
है निंन्दित महा यह कर्म्म मनू बतलाते।
हो ब्रह्म तेज सब नष्ट दान जो खाते।
सच कहो सनातन भीख कहो मत खीसी।
दुरवचन सहत चाखत डोलत लपसीसी ॥

॥ चौक ३ ॥

धृक्कार है जीते आस पराई करना।
कर लल्लो चप्पो झूंठ बड़ाई गाना * ॥
सत वचन कहत सकुचात लोभ के मारे।
हा ऋषियों की सन्तान भटकती द्वारे ॥
नहीं आती इनको शर्म हया गई मारी।
द्विज पदवी को छुड़वाय कहाये भिखारी ॥
क्यों करवाई षट कर्म छोड़ हांसीसी।
दुरवचन सहत चाखत डोलत लपसीसी ॥

॥ भजन १—करताली धुन का ॥

मांगन के बराबर भाई नहीं और काम है खोटा ॥हरे॥
जब लग अपनी पार बसावे, मांगने द्वार किसी के न जावे॥हरे॥
नाहक अपना धर्म गमावे, थाम हाथ में लोटा ।
नहिं और काम है खोटा ॥

द्विज कुलकी तजि गौरवताई, भिक्षा वृत्तिको नियत चलाई॥ हरे॥
पुरुपारथ दिया धूळ मिलाई, दिये वस्तर त्याग लंगोटा ।
नहीं और काम है खोटा ॥

पौरुष छोड़ भिखारी बनते, दांत निपोरे घर घर फिरते॥हरे॥
वाक्य कुवाक्य हैं सहने पड़ते, समझो क्यों न अंधोटा ।
नहीं और काम है खोटा ॥

भिक्षा अपना कर्म बताते, ऋषि सन्तान हो नहीं लजाते ॥हरे॥
पीताम्बर आयु मुफ्त गंमाते, हो अंत समय में टोटा ।
नहीं और काम है खोटा ॥

॥ दादरा ७ ॥

मत मांगो भीक छोड़ो बुरा है पेशा ॥
है कर्म महा ये निन्दित, जाने है इसको पंडित, नहीं बतलाते ठीक
छोड़ो बुरा है पेशा मत मांगो भीक ॥ हरे ॥
नहीं मान प्रतिष्ठा पाओ, चाहै जितना ढोंग बनाओ, बिगाड़ो
अपनी लीक । छोड़ो बुरा है पेशा मत मांगो भीक ॥ हरे ॥
बेशर्म नहीं शरमावें, तज पौरुष कर फैलावें, उड़ी चहेर की चीक ।
छोड़ो बुरा है पेशा मत मांगो भीक ॥ हरे ॥ जो मांग मांग
खाते हैं, वह कभी न बौसाते हैं, न अच्छी लागे सीख ।
छोड़ो बुरा है पेशा मत मांगो भीख ॥ हरे ॥

॥ ग़ज़ल ८ ॥

जो चाहते हो गर अपनी इज्जत तो भीक पेशा तजो है ज़िल्लत।
न सुर्ख़रुहो किसी को हासिल ये खूब समझो बुरी है इल्लत॥
न बात वहकी मजाज़ है कहना कहांसे लाये वह आलाहिम्मत।
न रस्म साबिक है ये बुज़रगी न देखी इसमें किसी की बरकत॥
जो चाहते हो गर अपनी इज्ज़त तो भीक पेशा तजो है ज़िल्लत॥

प्रतिग्रह लेने से मनुष्य नीचता को ॥ प्राप्त होता है ॥

इसपर श्री मान्यवर गोस्वामी घनश्यामजी शर्म्मा मुलतान निवासी लिखते हैं कि=विद्या,धन,शील,बल,पद और उपकार करने से मनुष्य उच्च माना जाता और अविद्या, दारिद्र, कुशील, अबल, अपद और अनुपकार करने से पतित होजाता है। इस नियम को विचार करने से विदित होता है कि क्षत्रिय आदि की अपेक्षामें-ब्राह्मण जाति अब उच्च नहीं गिनी जाती क्योंकि प्रतिग्रह वृत्ति रूप इस जाति में एक महान कुशील वर्त्त रहा है यद्यपि शास्त्रों ने प्रतिग्रह लेना ब्राह्मण के लिये लिखा है, पर साथ ही यह भी आज्ञा की है कि प्रतिग्रह लेनेसे ब्राह्मण हटा रहे क्योंकि मृत और अमृत इन दो प्रकारकी जीवकाओं में से प्रतिग्रह (दान लेना) अर्थात याचना करनी मृत कहिये मरी जीविका है और जिनकी जीविका मरी होती है उनके अन्तःकरण मृत-वत् होकर अपवित्र होजातेहैं यहां अवश्य वर्त्तमानके ब्राह्मणोंको प्रत्यक्ष देख रहे हैं। यदि जाति भरके लोग सब मांगनेके आश्रित न होते किन्तु उनमेंसे योग्य होता उसका हां दानसे सत्कार होता और बाकी सब क्षत्रि-यादिके तुल्य व्यापारादि करते होते तो बुद्धदेव को क्यों शास्त्र व ब्राह्मणों का अनादर करना पड़ता ? फिर कबीर, नानक जी आदि

क्यों कठोर वचन सुनाते ? पुनः आज कल के देशहितैषी लोग ऐसे ऐसे पुस्तक क्यों लिखते जिनके ऐसे नाम हैं कि "ब्राह्मण हमारे दोस्त हैं या दुशमन" और शत्रु क्यों कहते ? यम और पोप क्यों कहाते ? क्यों लोग यह कहते कि ब्राह्मणों ने ही अपने लिये पुराण बनाकर जीविका की प्रथा चलाई हैं। क्यों ऐतिहासिक यह लिखते कि ब्राह्मणों ने मनुस्मृति आदि में अपनी जाति के लोगों के लिये ऐसे वचन लिखे हैं कि ब्राह्मण को वध दण्ड नहीं देना इत्यादि ? क्या आर्य्यसमाज को ब्राह्मण जाति के विरुद्ध चेष्टा करनी पड़ती ?

सभ्यगण ! यदि हम में कोई दोष न होता तो कोई कलंक न लगता। यद्यपि साम्प्रतकाल में भारतमें उच्च लोगों में से ब्राह्मण ही कई उच्च हुए हैं जोकि बाकी लोगों से विद्या, पद और आकार आदि में बढ़कर हैं जैसे स्वामी दयानन्द जी, पण्डित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, पण्डित कुन्त, पण्डित भण्डार कर, बाबू सुरेन्द्रनाथ बनरजी, मिस्टर तिलक इत्यादि, तदपि ब्राह्मण जाति को "दान लेने वाला कलंक शुद्ध नहीं होने देता। वरं नीचे को गिराता जाता है"॥ देखो आर्य्यावर्त्त वर्ष १८ अंक ४२ पृष्ठ ९ कालम ३-४

॥ याचक बड़े हठी होते हैं ॥

देखिये ! महाराजा जरासंध जी ने कहा है —

याचक विष्णु कहा यश लीन्हों। सर्वस लैतोऊ हठ कीन्हों॥

॥ याचक सत्य और धर्म्म को भी त्याग देते हैं ॥

देखिये ! कोउ कहैरी सुनों और इनके गुण आली।
वलिराजा पै गये भूमि मांगन वनमाली॥
मांगत वामन रूप है परवत भये अकाय।
सत्य धर्म्म सब छांड़ि कै धरौ पीठ पै पाय॥

॥ ॥ याचक बड़े छली कपटी होते हैं ॥ ॥

१—भिखारी रावण ने सीता को हरा ॥

२—भिखारी विष्णु ने वृन्दा का सतीत्व नष्ट करा ॥

३—भिखारी बावन ने राजा बलि को छला ॥

४—भिखारी विश्वामित्र ने महाराजा हरिश्चन्द्र को दला ॥

५—भिखारी महादेव ने बनमें ऋषियों की स्त्रियोंको लज्जितकिया ॥

६—भिखारी अर्जुन ने श्री बलदेव जी से छल किया ॥

७—भिखारी कृष्ण ने जरासंध को मरवाया ॥

८—भिखारी नारद ने राजा मोरध्वज के बेटे को चिरवाया ॥

९—भिखारी त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) ने श्री अनसूया जी के पातिव्रत धर्म्म को नाश करना विचारा

१०—भिखारी आला ऊदल ने माड़ों के राजा को मारा ॥

११—भिखारी मुनिया बुढ़िया ने लाखों यात्रियों को लुटवाया ॥

१२—भिखारी मेजर टक्कर साहिब ने हज़ारों हिन्दुओं का धर्म्म भ्रष्ट करवाया ॥

१३—भिखारी ही (आज कल के भीख मांगने और दान लेने वाले) लाखों यात्रियों के करोड़ों रुपयों को ठगा करते हैं ॥

१४—भिखारी ही (गोसांई और महन्त लोग) हज़ारों पतिव्रता और भोली भाली विधवाओं के सतीत्व नष्ट करा करते हैं ॥

१५—भिखारी ही (तीर्थ पुरोहित) तीर्थ यात्रियों को (दान के नाम से उनका सारा धन ले) रीता कर छोड़ देते हैं और फिर वह विचारे या तो उधार लेकर या भीख मांगते और सैंकड़ों प्रकार के दुख झेलते हुए निज गृह पहुंचते हैं ॥

१६—भिखारी गुप्तचरों का भी कार्य्य करते हैं ॥

१७—भिखारी लड़कों को भी बहका कर ले जाते हैं ॥

१८—भिखारी रासधारी और वेड़िन हज़ारों अमीरों को मोह कर उन का धन हरन कर लेते हैं ॥

॥ भिक्षाग्राही का हृदय कठोर [निर्दयी] होता है ॥

विद्वानों ने निर्दयी को निन्दनीय ठहराया है । इसलिये भिक्षा लेना = मांगना अत्यन्त बुरा है॥

देखिये ! भिखारी इन्द्र ने दाता दधीचि का कैसी निर्दयता से अस्थि लिया । और उसके प्राणान्त पर कुछ भी ध्यान न दिया ॥

इसी आशय पर महाराजा जरासंध जी ने कहा है—

'याचक को दाता की पीर नहीं होती'

इसी प्रकार अबदुल रहीम खानखाना वैरमखां के पुत्र खानखाना नवाब ने भी कहा है—

यम याचक और व्यौहरो । काम आतुरी नारि ।
पर पीड़ा जानैं नहीं । सुनु रहीम ये चारि ॥ १ ॥

याचक की ढीठता को देखकर, उसके दबाने के लिये एक विद्वान ने निम्न लिखित उपाय भी बतलाया है—

ठुर याचक अरु पाहुनों । इन को एकी सुभाव ।
तीन दिना के लंघन ते । फेर न द्वारे आव ॥ १ ॥

॥ मंगते जात कुजात का भी विचार नहीं करते ॥

भीख मांगने वाले=भिखारी लोग और दान लैने वाले ब्राह्मण गण भीख मांगते और दान लेते समय जात कुजात का भी विचार नहीं विचारते । और नीच से नीच जाति के मनुष्यों को भी दादा और बाबा आदि प्रतिष्ठित शब्दों से पुकारते हैं । यथा—

॥ दोहा ॥

देखत पात्र कुपात्र नाहिं । गहत न धर्माधर्म ।
जोड़ि हाथ दादा कहत । मंगता हमरो कर्म ॥ १ ॥

॥ सोरठा ॥

करि बिनती बहु भांति । सत्य त्यागि मिथ्या बदत ।
पूंछत जात न पांति । दान ग्रही द्विज देव गण ॥ १ ॥
खड़े निकारैं दांत । हाहा दादा दान करु ।
कर पसार फिफियात । हम तुमरे बछरा गऊ ॥ २ ॥

॥ कवित्त—४ ॥

कोळी किरात नट खाटिक स्वपच जाति चूहड़ चमार कुम्भकार मनिहार को । नाई बारी धुना धोबी तेली और तमोली भील बधिक बुलन्द नाम लेत भूमिहार को ॥ काछीऔ कहार लोध लोनिया लोहार भूजी मुखड़ भिखारी भानुमती बेलदार को । इन सबही को दाता दीन बन्धु दीनानाथ कहि याचक पुकार सदाहीं लादे पाप के पहार को ॥

॥ बाणी—९ ॥

मोटे ताजे हट्टे कट्टे । जेते देखे नंगे लुच्चे ॥१॥
भंगी भट्ट औ नट्ट किराती । जत्ती देखी नीची जाती ॥२॥
चिड़ीमार मछुआ बरुआरा । सब करते रोजगार पिआरा॥३॥
पर मंगता इनसों भी मांगैं । अपना कर्म धर्म सब त्यागैं॥४॥
दाता दादा दयालु कहैं । हाट बाट घर घेरे रहैं ॥५॥
काम परे सेवा भी करैं । कर्म नीच मनमें नाहिं धरैं ॥६॥
बार बार जोड़त हैं हाथ । कहि दादा ठेड़ी दै हाथ ॥७॥
धेला पैसा जो कुछ पावैं । धनि २ जैजै कार मनावैं ॥८॥
नीच कर्म जिन के यह भाई । पास न उनके कछु प्रभुताई ॥९॥
कौड़ी मुफ्त दांत जबलागी । कर्मधर्म सब दीन्हों त्यागी॥१०॥
लोक लाज ताखे लै धरी । बिन मांगे बीतत नाहिं घरी॥११॥

बी० एन० शर्मा ॥

॥ नरेंद्र-छन्द-६ ॥

काछी कुरमी लोधी नाऊ तीर्थ करन जे आवैं।
माता पिता अन्नदाता की तुम मुख पदवी पावैं॥
कोरी भाट कलार कहारहु शूद्र कुपथ अनुगामी।
पदवी लहैं, तुम्हारे मुखते महाराज अरु स्वामी॥
कवि-दीन ॥

॥ बहुधा दान ग्राही निज दाताओं से भी विश्वास घात करते हैं॥

लीजिये ! आपको दो--एक दृष्टांत भी दिये देता हूं॥

१—मुसल्मानी बादशाहत के आरम्भ में जब कुतबुद्दीन प्रथम बादशाह (दिल्ली) ने अपने सेनापति बख्तियार खिल्जी को बंगाल विजय करने के लिये भेजा तो बंगदेशाधिपति राजा लक्ष्मण-सेन के साथ इन स्वार्थियों [दानग्राहियों] ने जैसा विश्वासघात किया वह किस इतिहास वेत्ता पर विदित नहीं है। इन लोगों ने राजा लक्ष्मणसेन को परामर्श दिया था कि महाराज यह कलिकाल है। यवनों की अवश्य विजय होगी इसलिये उचित है कि सब धन ब्राह्मणों को देकर आप किसी तीर्थ स्थान में जाकर वास कीजिये। राजा ने ब्राह्मणों के बचनों पर विश्वास करके कुछ युद्ध प्रबन्ध न किया और यवन सेना के आजाने पर भाग कर बच गया। परं ईश्वरीय नियम अटल है। जैसा कि—

होय बुराई तें बुरो यह कीनै निरधार।
खाड खनेगो और कों ताकों कूप तयार ॥ १ ॥

बस इसी नियमानुसार ब्राह्मणों का भी उनके विश्वासघात का फल शीघ्र ही मिलगया अर्थात् राजा के राजकोष का द्रव्य जो छल करके लिया था वह यवनों ने छीन लिया और इनकी (दान ग्रहीताओं

की) सब प्रकार दुर्दशा की । देखो स्वार्थान्धप्रदीपिका की प्रस्तावना पृष्ठ १--२ पंक्ति ११

१--दान लैनेवालों का विश्वास करके सैंकड़ों हिन्दू लोग अपनी स्त्रियों को दान करके दान ग्रहीता को सौंप देते हैं । और फिर उसी क्षण मूल्य देकर लौटा लेते हैं । अब आपको दान ग्राहियोंके विश्वास घात की वार्ता सुनाता हूं ॥ मन देकर सुनिय ।

सन् १८७६ ई० में एक नवयुवक राजा ने अपनी वृद्ध माता की आज्ञानुसार अयोध्या जी में सरजू नदी पर अपनी नव यौवना रानी को षोड़श शृंगार कराकर और एक बहुत और बहु मूल्य पालकी में बिठला कर एक युवा मुष्टण्डे पण्डे को दान कर देदी। ज्योंही राजा ने दी त्योंहीं दीवान ने पुरोहित से कहा " पण्डाजी मूल्य कहो" । सण्डा पण्डाजी चुप बोलतेही नहीं । राजा की माता ने एक सहस्र मुद्रा देकर लैनेको कहा । पण्डाजी ने कहा- महाराजा मैं यह रुपये न लूंगा । राजा साहब ने समझा कि कुछ अधिक मांगता है । आज्ञा दी कि एक सौ अधिक करदो । पुरोहित जी ने उत्तर दिया । कि यजमान ! यों आपकी इच्छा है कि पालकी उठा लेजाओ । परन्तु तुमने दान दिया है । मैं दान में मिली हुई वस्तुको बेचना नहीं चाहता । फिर तो राजा साहब बड़े झुंझलाये और कहा झकमारता है । इसे कुछ भी मत दो । और पालकी उठाकर लेचलो । जब माता जी को विदित हुआ । तो बहुत घबड़ाई । और कहला भेजा । कि खबरदार कदापि बिना प्रसन्नता पुरोहित जी की पालकी मत उठाना । क्योंकि इस समय पालकी उठातेही नर्क की तय्यारी होजायगी । तब राजा साहिब ने पुरोहित जी की बड़ाई करके विनय कर कहा । कि आप १ सहस्र के स्थान २,३,४,५,६,७,८,९,१० सहस्र मुद्रा लेलो । इस पर भी

पुरोहितजी ने नकार किया। तब फिर राजा साहब ने कहा कि महाराज पुरोहित जी ! आप १० सहस्र रुपये के अतिरिक्त यह सब गहना भी लेलीजिये ! जिसे कि रानी साहिबा इस समय पहने हुऐ हैं। परन्तु एक वार हमें अपने वचनों से छुटकारा दिवाकर हमारी बूढ़ी माता को शान्ति करादीजिये। राजा साहिब के इन सब दीन वचनों को सुनकर भी पुरोहित जी का वज्र हृदय न पसीजा। और उत्तर न देते हुऐ केवल सिर घुमादिया। अन्त में राजा साहब को अच्छे प्रकार विदित होगया। कि यह पुरोहित विश्वासघाती है। इसलिये इसका उपाय करना उचित है। राजा साहबने डिपुटी कामिश्नर साहिब फ़ैज़ाबाद के पास जाकर तीर्थ तटका सारा वृत्तान्त सुनाया। डिप्टी कमिश्नर साहब ने पुलिस को हुक्म दिया। पुलिस ने तुर्तफुर्त पण्डाजी को हथकड़ी लगाकर हवालात में प्रवेश किया। एक दिनरात की हवालात ने पण्डाजी की बुद्धिको सुधार दिया। पण्डाजी ने एक हज़ार रुपया लेकर कहदिया। हां मैंने रानी का मूल्य पालिया ॥

राजा साहब ने यह वाक्य सुनकर कामिश्नर साहब को बहुत कुछ धन्यवाद दिया कामिश्नर साहब ने हिन्दू धर्म और राजा साहब की बुद्धि पर शोक प्रगट करके उन्हें विदा किया ॥

आज़ कल तो यह सण्डे पण्डे रातादिन वात वात में अपने यजमानों = मूर्ख दानदाताओं से विश्वासघात किया करतेहैं। देखिये !

१-गौदान के समय भाड़े की गऊ लेआते हैं। और उसे पुजवाकर उसके मूल्य के २५,३० रुपये गांठ बांध लेते हैं ॥

२—शय्या दान की वेला इधर-उधर से कपड़े लत्ते, बरतन-भांड़े गहना-पाता लाकर सेज सजा देते हैं। और यजमान से उनका मोल लेकर घर में धर लेते हैं ॥

३—ब्राह्मण भोजन की बेर--

(अ) यदि यजमान हलवाई को बतादे तो पुरोहित जी चौथाई या तिहाई माल लाकर शेष ३ चौथाई या दो तिहाई माल के दाम ले लेते हैं। और इसका पता यजमान को नहीं लगने देते हैं। क्योंकि पुरोहित और हलवाई की मिली भगत होती है ॥

(क) यदि दाता परचूनिया को बतादे तो पण्डाजी बनिये से आटा, दाल, घी, बूरा आदि कुछ नहीं लेते। और उन सीधों का मोल रोकड़ी बाजार भावसे बहुत कम लेलेते हैं। भाव से दाम कम क्यों लेते हैं? इस भय से कि कहीं यजमान को मालूम न होजावे॥ बस इसी को कहते हैं कि दबी बिल्ली चूहों से कान कटाती है॥

(च) यदि दाता घर में करने के लिये प्रोहितजी को कच्ची सामिग्री दिलाता है। तो प्रोहितानीजी भोजन बनाने से पहिले ही आधा सामान उठा अलग कर देती है। और आधे की रसोई तयार कर देती है। और इस विश्वासघात की खबर दाता को नहीं होने देती है॥

४— पण्डे लोग भोले भाले यजमानों को तीर्थ स्थान पर के सब मंदिरों के दर्शन भी नहीं कराते। क्यों? वह समझते हैं कि यदि जिजमान बहुत मंदिरों में जायगा तो भेट [नकदी] भी बहुत चढ़ावेगा और फिर उनको दान भी कम देगा॥

५—पुरोहित लोग अपने विश्वास पर परदेशियों को ऐसी लुटेरी दुकानों पर ले जाते हैं। कि जिनपर उनको दलाली अच्छी मिलती है। सच है—

झूठे को सच्चा बतलाते खाते हक दलाली का॥

६—विश्वास घाती पण्डे यात्रियों से भंगी, पनिहारा और इक्का वाला आदि लोगों को चौगुने दाम दिलवा देते हैं। क्यों? इस लिये

कि वह फिर उन लोगों से सदैव अपना काम काढ़ा करते हैं ॥

बस इसी प्रकार दान ग्रहीता निज दाताओं के साथ अनेक प्रकार के विश्वास घात किया करते हैं ॥

॥ बहुधा दान लेने और भिक्षा मांगने वाले बड़े पापी होते हैं ॥

देखिये ! धर्म्म शास्त्रों में लिखा है । कि —

नहिं सत्यात्परो धर्मो । नानृतात्पातकं परम् ॥ १ ॥

॥ अर्थ ॥

सांच बरोबर धर्म नहीं—झूंठ बरोबर पाप ॥ २ ॥

अर्थात् झूंठ से बढ़कर और कोई पाप नहीं । इसलिये सिद्ध होगया कि झूठ बोलने वाला अवश्य विशेष पापी होता है ॥

बहुधा दान लिवैया और भीख मंगैया मिथ्या मिस करके ही याचना किया करते हैं । सुनिये ! कोई कहता है—अन्नदाता जी ! कुछ धन घर बनाने को दो, रहने को नहीं है । कोई पुकारता है—हे बाप जी ! मुझे कुछ धन दीजिये ! जिससे ऋण चुकादूं । कोई चिल्लाता है—हे दाता! मेरे माबाप मरगये, कुछ खाने को दो। कोई गिरियाता है—हे महाराज ! मेरी बहू ने पुत्र जना है, आज तीन दिन होगये, खानेको नहीं मिला, जच्चा बच्चा दोनों भूखे विलख रहे हैं, सो कुछ उनके खान पान को दिवाइये ! कोई सुनाता है- हे स्वामी ! मेरे बाप का मरना करादीजिये ! यहां पर 'मरना' के अर्थ ज्यौनार जो मनुष्य के मरने पर की जाती है । कोई अपने बेटे के जनेऊ के बहाने से । कोई अपनी बहन, भानजी भतीजी और बेटी के व्याह के नाम से मांग २ कर हजारों रुपये कमा लाते हैं । कोई २ किसी १ कन्या को साथ ले लेते हैं । और कहते फिरते हैं । कि --कन्या का व्याह करके पुन्य ले लो । बस इस बहाने से भी दान ग्रहीता सहस्रों मुद्रा उपार्जन करलाते हैं ॥

इस विषय पर श्री मान् वर पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम.ए. डिपुटी कलेक्टर कहते हैं । कि—

भिक्षा मांगने का एक यह भी ढंग है कि किसी कन्या को साथ ले लिया और लगे पुकारने कि "महाराज! कन्या दानका फल लीजिये,, टके टके पर कन्यादान का अमूल्य पुण्य गली गली विकरहा है । कोई कोई दुष्ट ऐसा तक करते हैं । कि बालकों को कन्याओं के वस्त्र पहना देते हैं और फिर इस बहानेसे भोले लोगों को ठगते हैं ॥ देखो " व्यय ,, पृ० ४९ पं० ४

एक महात्मा कहते हैं कि बहुधा भिखारी कभी सच ही नहीं, बोलते यथा— ॥ दोहा ॥

तनक कनक के कारनें । सहत बहुत सी आंच ।
पेट चपेट लपेट सों । कभी न बोलत सांच ॥

बहुधा दश २ बीस २ भिखमङ्गे इकट्ठे होकर "१झुनकारा ,, मांगा करते हैं । उसकी रीत यह है—सबसे पहिले एक मनुष्य (भिखारी) अपने साथ के सब लोगों से लेकर, कुछ रुपये—पैसे अपने हाथ में ले लेता है । और दाता के पास जाकर अपने हाथ के रुपये--पैसों को दिखाते हुए कहता है । अन्न दाता जी ! हमें १० आदमिन की रसोई करनी है । कछू तो हमारे पास है । और कछू तुम देउ । जो तुमारी इच्छा होय । वहां से थोड़ा--बहुत जो कुछ मिला सो लेकर दूसरे के यहां जा पुकारे । अरे सेठ ! हम ४० जने हैं । तेरी नगरी में आयेहैं । रसोई करनीहै । चून की तो मिसल है गई है । अब तू ! घी को बंदोबस्त कराय दे । यह कह कर नाचने लगे । अहा ! क्या अच्छा बिन दाम का कौतुक दिखाई देता है । भिखारी नाचते हैं । सब लोग देखते और हंसते हैं । सेठजी क्रोध में आकर

१---एक प्रकार की भीख मांगने की चाल ॥

नौकरों को पुकार कहतेहैं। तुमने इन सालेबदमाश,उठाईगीरों को क्यों अन्दर आने दिया ? इतनी सुनतेही नौकर लोगों ने उन नकली भिखारियों को गाली देते हुए, गरदन पकड़ २ कर कोठी से बाहर निकालना आरम्भ किया। ये डरपोक भिखमंगे जैसे कि जल्दी जल्दी उतरे। कि वैसे ही ५--७ जने गिर गये। और सीढ़ियों पर लोट पोट होते हुए नीचे आ पड़े। अस्तु। वहां से उठकर सेठ को बुरा भला कहते हुए तीसरे ठिकाने पर जा मांगा। और इसी प्रकार कई ठिकानों से आटा, दाल, घी, बूरा, निमक, मिर्च, मसाला, दही, दूध, चामर, लकड़ी, उपला, पातर, दौना; भांग, ठंडाई, तमाखू, हुलास और सुपारी आदि वस्तुऐं मांगते --मांगते कुम्हार पै जा पुकारे---

दुनियां को तू पति कहावे सेवा करे भोला की।
जगन् कवीश्वर यों कहै मिहर करो एक तौला की ॥ १ ॥

बस यह सुनतेही कुम्हार ने खुश होकर मिट्टी के बरतन (हांडी, मटकने और सकोरा आदि) उस भिक्षुक मण्डली के हवाले किये। अब इन सब चीजोंको लेलिवाकर उन भिक्षुकों का झुण्ड अपने डेरे पर जा पहुंचा। और उन सब मांगी हुई चीजों को एक बनिये के हाथ बेच, नकद दाम ले, आपस में बांट, अपने अपने लंगोटे से बांध लिये और भोजन कहीं अलग नौते में जाकर करलिये। यह लोग ऐसा अधर्म=पाप बरषों तक किया करते हैं। इसीलिये कहना पड़ताहै। कि--बहुधा दान लैने और भिक्षा मांगने वाले बड़े पापी होते हैं॥

नोट=यदि आप को इन पापी मण्डलियों का कौतुक=तमाशा देखना हो तो बंबई, कलकत्ता, काशी, कानपुर और अहमदाबाद आदि बड़े बड़े नगरों में जाइये। जहां स कि ये पापी लोग भोले भाले बंगाली, गुजराती, लुहाना, भाटिया और

मारवाड़ी आदि लोगों को धोखा देकर हज़ारों रुपये नक़द और सैंकड़ों का माल मार लाते हैं ॥

॥ कथा—१ ॥

॥ मंगते कुत्ते के भी बराबर नहीं होते ॥

एक दिन एक कुत्ता और एक मंगता एक पेड़ के नीचे बैठे हुए झगड़ रहे थे । अचानचक उसी समय वहां पर श्री रामदासजी महाराज आन पहुंचे । उन को लड़ते हुए देखकर रामदासजी ने कहा " अरे भाई ! तुम क्यों एक दूसरे से अड़ रहे हो ?"

कुत्ता....अजी महाराज ! यह भिक्षुक मेरी बराबरी करना चाहता है ॥

भिखारी....हे महाराज ! क्या मैं इस कुत्ते के भी तुल्य नहीं हूं ?

रामदासजी....नहीं भाई ! नहीं, तुम [भिक्षुक] इस (कूकर) के समान नहीं हो ॥

भिक्षाग्राही....महाराज ! मैं [मंगन] इस [श्वान] के समान क्यों नहीं ? जब कि मैं इस केसे सर्व कार्य्य करता हूं । अर्थात् जैसे यह [कुत्ता] पूंछ हिलाना, चरणों पर झुककर सिर देना, पृथ्वी पर लोट कर पेट और मूंह दिखलाना इत्यादि दीनता टुकड़ा देने वाले के आगे करता है । वैसेही मैं=भिक्षुक भी भिक्षा देने वाले के सम्मुख हाथ जोड़ता हूं । घिघियाता हूं । बत्तीसों दांत दिखाता हूं । पेट कूटता हूं । आंख नीचे नवाता हूं । दीन हीन होकर दीनता दिखाता हूं । मिथ्या प्रशंसा कर सुनाता हूं । कठोर और कड़ुए वचन सुनता हूं । कभी २ रेलवे स्टेशनों पर बूट की ठोकरें, बेत की मारें और कुली पोरटरों की मारें भी सहलेता हूं ॥

रामदास—भाई ! यह तो तुमारा कहना ठीक है । क्योंकि कुत्ते के समान तुम सब काम करते हो । किन्तु कूकर के तो दुम होती है ।

और तुमारे नहीं। बस इसी लिये तुम = मंगते कुत्ते के बराबर नहीं है॥ कहा भी है—

॥ दोहा ॥

मंगन में अरु स्वान में। इतो भेद विधि कीन ।
स्वान सपूंछ विलोकिये। मंगन पूंछ विहीन ॥ १ ॥

॥ चुटकला ॥

अगर मंगते दुम दार होते।
तो कुत्ते से कभी कम न होते॥ २ ॥

॥ कथा—२ ॥

॥ याचक कौआ से भी अधम होता है ॥

एक समय झांसी निवासी श्री मान्वर पण्डित शिवदास जी महाराज चन्द्रग्रहण के ऊपर श्री गङ्गा जीमें गोता लगाने के लिये श्री काशी जी को पधारे जब श्री गंगाघाट पर पहुंचे तब आपने एक भिक्षुक से कहा। कि "भाई! तुम और सब भिक्षाग्राहियों को भी बुलालो। हम कुछ बांटना चाहते हैं"। भिक्षुक ने बहाना (छल) कर कहा कि "महाराज! इस काल कोई नहीं मिलेगा। क्योंकि सब याचक गंगा पार रामनगर काशी नरेश के पास गये हुए हैं। इस लिये जो कुछ देना हो सो मुझही दे दीजिये! मैं ही अकेला गंगा तट पर बैठा हुआ आपके नाम की माला फेरा करूंगा"। यह सुनतेही पण्डितजी ने जो कुछ सब को देना विचारा था। सो सब धन केवल उसी एक भिक्षुक के हवाले कर दीया=सौंप दिया। धन देकर ज्योंही पण्डित जी गंगातीर से ऊपर आये। त्योंही बहुत से मंगतों को मांगते हुए देखा। मंगनों को देखकर पण्डित जी ताड़गये कि उस भिक्षुक ने स्वजाति के जनों को न बुलाने के कारणही मुझे (पण्डित जी को) धोखा दिया॥

पण्डित जी ने डेरे पर आकर बलिवैश्यदेव करके एक भाग एक काग को दिया। उस काक ने खाने से पहिले कांउ २ करके अपने स्वजाती सब कौओं को बुला लिया। पण्डित जी काग के इस कर्त्तव्य को देखकर इतने अधिक प्रसन्न हुए कि जितने अधिक अप्रसन्न याचक की करतूति को देखकर हुए थे। अन्त को पण्डित जी ने दोनों (काक और याचक) के भावों का सारांश लेकर यह कहते हुए कि " याचक कौआ से भी नीच होता है " निम्न लिखित श्लोक बनाया ॥

काक आव्हयते काकान् याचको नतुयाचकान्।
काक याचक योर्मध्ये वरं काको न याचकः ॥ १ ॥

अर्थ = कौआ अपने किसी खाने योग्य पदार्थ को देखकर कान् कान् नहीं करता वरन उस वस्तु को खिलाने के लिये निज जाति के और काकों को हेला देकर इकट्ठा करता है। और याचक लाभ की ठौर इतर भिखारियों को इकट्ठा नहीं करता बल्कि विचारता है कि जितने भिक्षुक कम = थोड़े होंगे या और कोई दूसरा न होगा तो वह कुल भाग मुझ अकेलेही को प्राप्त होजायगा इससे जाना जाता है कि काक और याचक इन दोनों में काकही श्रेष्ठ है न कि याचक अर्थात् याचक कौआ से भी अधम होता है ॥

॥कथा—३ ॥ भिक्षुक की स्त्री भी उस से नहीं डरती ॥

हाय भिक्षा वृत्ति कैसी बुरी जीविका है। कि उसके करने वाले से न कोई प्रीति रखता है। न कोई भय खाता है। न कोई उस का आदर सत्कार करता है। औरोंका तो कहना ही क्या है? परन्तु उस (भिक्षुक) की अर्द्धांगी = पत्नी [स्त्री] भी उससे (भिखारीसे) नहीं डरती ! देखिये ! इस विषय पर मैं आपको निज नेत्रों देखी हुई एक छोटी सी कहानी सुनाताहूं ॥

संवत् १९६२ वि० मिती भाद्रपद कृष्णा ९ को एक भिक्षा-

वृत्ति करने वाला भिखारी अपनी स्त्री से निम्न लिखित वाक्य कहकर जमना तटके किसी घाट पर भीख मांगने को चला गया ॥

वाक्य = अरी ! आज ठाकुरजी के रसोई जल्दी तैयार कर राखियो ! मैं झटपट दो एक कौर खाय के जिजमानन के संग गोकुल जाऊंगो । देखियो ! देर न होय । जब भिख मंगेजी घाट, बाट, हाट, चाटसे भीख मांग—मूंग कर घर पर आये और स्त्रीको द्वार पर खड़े हुएं पाया तो गुस्से होकर उसको डराने लगे । किन्तु वह निडर न डरी । और बराबर उत्तर प्रत्युत्तर देती रही । जैसा कि इस पद्यसे विदित होता है—

कहाँ हो रसोई क्यों न कीनी महा पापिनी तैं,
पापी तेरो बाप रांड़ बोलत घुरायगी ।
रांड़ तेरी मैया और बहिन हूं कूं रांड़ कर,
निकर मेरे घर में से जूतिन की खायगी ॥
घर तेरो है या तेरे बाप को बनायो यह,
ऐसी दूंगी पथरा की नाक कट जायगी ।
एहो विश्वनाथ अब मरवो नजर आयो,
मरजा निगोरें का पूंछ कट जायगी ॥१॥

रामायण के देखने से विदित होता है कि जब श्रीमहाराजा रावण लंकेशजी ने सीता के कारण भिखारी-भेष धारण करलिया तब उनकी महारानी मंदोदरीजी ने भी उनसे भय खाना छोड़दिया और निडर होकर धमकाते हुए उन्हें=लंकेशजी को धर्मोप देश किया ॥

॥ कथा—४ ॥

॥भिक्षुक के सन्तान भी उससे भय नहीं खाते॥

बहुत थोड़े दिन की बात है कि एक बेर एक आवश्यक कार्य वश संवत् १९९० वि० के कार्तिक कृष्णा में मैं हरिद्वार गया और

जब गङ्गा नीर के तीर पहुंचा तो वहां के सारे भिक्षुकों [पण्डों] ने कौओं की तरह कां कां करके मुझे आन घेरा। कोई नाम-ठाम और गाम पूछता है। कोई जाति-पांति का पता लगाता है। कोई पाई--पैसे मांगता है। कोई कपड़े-लत्ते चाहता है। कोई हाथ झप-टता है। कोई गाली-गलौज बकता है। कोई जैगंगा जय गंगा की पुकारता है। कोई गो दान, कोई शय्या दान, कोई पृथ्वी दान, कोई घोड़ा दान, कोई हाथी दान, कोई अन्न दान, कोई स्त्री दान और कोई प्रत्येक प्रकार के दान लेने को झगड़ता ह। कोई दे दान, दे दान रटता है। कोई करो दान करो दान चिल्लाता है। कोई आपस में एक दूसरे के हाथ से माल ले भागता है। कोई आपस में एक दूसरे के हाथ को मरोड़कर पाये हुए दान को ले दौड़ता है। कोई आपस में छीना-झपटी करता है। कोई आपस में मारपीट करता है। कोई छोठी तानता है। कोई घूसों उठाता है। कोई कमर पकर दे मारता है। कोई लाल लाल आंखें किये घूमता है। कोई कहीं चरस की चिलम पीता है। कोई कहीं गांजे की दम भरता है। कोई सुलफे की साफी साफ करता है। कोई गजल गाता है। और आला अलापता है। पर ऐसा कोई न दीख पड़ा जो वेदाध्ययन करता हो। अस्तू—बड़ी कठिनाई से स्नान करके ज्यों हीं घाटके ऊपर एक हाट पर आया त्योंही दो जनों को बड़बड़ाते हुए पाया। प्रथम तो वे दोनों आपस में एक दूसरे पर स्वान समान घुरघुराये। फिर देखतेही देखते झट-पट=चटपट एक दूसरे से गटपट=उलटपुलट होकर गुत्थ पुत्थ होगये। पूछने से जान पड़ा कि वो दोनों सगे बाप बेटे थे। ठाकुर धर्म्मसिंह जी ने उनको छुड़ा दिया। पंडित धर्म्म दास जी ने उन दोनों से लड़ने का कारण पूछा। प्रथम बाप, जिसका नाम गल्लूथा, बोला—पण्डित जी महाराज! अब तो महाराज कलियुग जी का राज्य है।

बेटा जितनी अनीति न करें उतनी ही थोड़ीहै। फिर बेटा नाम मल्लू कहने लगा--महाराज पण्डित जी! कलजुग भलजुग का प्रभाव कुछ भी नहीं है। यह [बाप] मुझे भीख मांगने को कहता है। पर मैं नहीं मांगता। और मेरा भीख न मांगना ही इसकी अप्रसन्नता का हेतु है। और इसी लिये यह मुझ से लड़ता भिड़ता रहता है। परन्तु मैं इसका कुछ भी भय नहीं भरता। और इसी प्रकार मेरे और सब भाई बहिन भी इसका कुछ भय=डर नहीं मानते = करते॥

धर्म्मदासजी---अरे मल्लू! यह गल्लू तेरा बाप है। तू इस के [बाप के] साथ ऐसा बर्ताव न बर्ता कर॥

मल्लू---महाराज धर्म्म दास जी! मैं इसको कभी भी बुरा कहना नहीं चाहता। परन्तु यह [बाप] औरों से तो क्या हम [अपने--बाल बच्चों] से भी अपनी प्रतिष्ठा कराना नहीं चाहता। यह भीख मांगते २ एक बड़ कठोर हृदय का बनगया है। और इसी से यह अपने पिताजी [हमारे बावा जी को], जो कि एक सन्त थे और धर्म्मात्मा पुरुष थे, बहुत मारा करता था। मैं तो इसको कभी कुदृष्टि से भी नहीं देखता। पर हां मैं न इसकी प्रतिष्ठा करता हूं। और न इस से भय खाता हूं। क्योंकि यह सदव धर्म्म के विरुद्ध मुझे भिक्षा मांगने को शिक्षा करताहै॥

महाराज मैं यह भली भांति जानता हूं। कि—

तात मात को दुःख जो। देत महा दुर चार।
तिन को सुख कबहू नहिं। मिलि है ग्रंथ प्रचार॥ १॥

पर मैं इस उक्त वाक्य से निम्न वाक्य को अधिक मानता हूं॥

ईश्वर से अति अधिक जो। तात मात से प्रेम।
सो नर ईश्वर योग्य नहिं। धर्म ग्रंथ का नेम॥ २॥

महाराज! धर्म्म विरोधी गुरू को भी न मानना चाहिये। यथा—

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्या हीनं गुरुं त्यजेत् ।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निस्नेहा न्बांधवा त्यजेत ॥ ३ ॥
चाणक्यनीति अ० ४।१६

अर्थ = दया रहित धर्म्म को, विद्याहीन गुरु को, क्रोधमुखी स्त्री को और बिना प्रीति बान्धवों को त्याग देना चाहिये ॥

इसी प्रकार रहीम ने भी कहा है—

अनुचित वचन न मानिये, यद्यपि गुरु सुगाढ़ ।
सुनु रहीम रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ ॥ ४ ॥

धर्मदासजी—अच्छा भाई मल्लू ! अब हम अच्छी तरह समझ गये कि तेरा कुछ कसूर नहीं है । तू अपने बाप गल्लू का कहना भीख मांगने को कभी न मान । क्योंकि इस सारे संसार में भीख मांगने के समान दूसरा कोई अधर्म्म ही नहीं है ॥

इस पर मैंने उक्त पण्डित जी से पूछा कि महाराज ! इस एक ने भीक न मांगी तो क्या ? और सब भिखमगों के बच्चे तो भीख ही भीख मांगा करते हैं ॥

पंडितजी—और सब बच्चे विद्यावान भी तो नहीं होते । बिन विद्या के धर्माधर्म की पहचान नहीं होती । और जब वह बच्चे, जो धर्माधर्म को नहीं जानते हैं । और प्रति दिन अपने मा-बाप भाई-बहिन आदि नातेदारोंसे भिक्षा मांगनेकी शिक्षा सीखते और आज्ञा पाते रहते हैं । यदि भीख मांगे तो डर ही क्या है ? क्योंकि वह तो अपने बाप दादा की चाल चलते हैं । और कहा भी है। कि—

चूहे के बच्चे तो बिला ही खोदते हैं ॥ १ ॥
और भी—माता पूत पिता बत घोड़ा ।
बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा ॥ २ ॥
अन्यच — जिसका जस माई बाप ,

तिसका तस करिका ।
जिसका जस घरबार ,
तिसका तस फरिका ॥ १ ॥

पश्चात् इस के वह भीख मांगने वाले उद्दण्ड लड़के भी तो अपने भिक्षुक मा-बापों का कहना नहीं मानते और उन्हें (अपने मा-बापोंको) गाली देते हुए घूंसे, थप्पड़ और लात लाठियों से रात दिन मारा करते हैं। और भय तो कभी खातेही नहीं बस इसी लिये कहना पड़ता है कि भिक्षुक के सन्तान भी उस से भय नहीं खाते ॥

॥ भिखारी के पास मान नहीं रहता ॥

क्योंकि भिक्षुक सदैव दूसरोंके दरों पर पड़ा रहता है। और परघर पर जाने से मान नष्ट होजाता है। यथा——

॥ सोरठा ॥

पर घर गये रहीम । काकी महिमा ना घटी ।
गंग नाम भयो धीम । कौन बतावै जलधि में ॥ १ ॥

॥ दोहा ॥

पर घर कबहुं न जाइये । गये घटाति है जोति ।
रवि मण्डलमें जाति शशि । छीन कला छवि होति ॥ २ ॥
जाय समानी अब्धि में । गंग नाम भयो धीम ।
काकी महिमा ना घटी । पर घर गये रहीम ॥ ३ ॥

नोट—अरे मंगतो ! क्या उक्त वाक्यों को सुनकर भी दूसरोंके दरों पर, जहां पर कि दुदकारे जाते हो, जाना न छोड़ोगे ? अर्थात् भीख मांगना न त्यागोगे ?

॥ विराना अन्न खाना ॥

अरे सेंत मेंत में विराना अन्न खानेवाले मुफ्तखोर भिखमंगो ! क्या निम्न लिखित वाक्यों पर ध्यान न दोगे ?

रोगी चिरप्रवासी परान्न भोजी परावसथ शायी ।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ १ ॥
हितोपदेश पृष्ठ ९८ श्लोक ११९

अर्थ—रोगी, बहुत समय से परदेश में रहने वाला, पराया अन्न खाने वाला (भिखारी) पराये घर सोने वाला, इनका जो जीना है सो मरना है और जो मरना है सो सुख है ॥

॥ अर्थ-दोहा ॥

नित विदेश पर घर शयन, पर भोजन अरु रोग ।
होंय चार जे ते जियत, मरण २ तनु योग ॥१॥
श्रम करि वस्तु मिलै भली, बिन श्रम मिलौ न आहि ।
ज्यों स्वप्ने धन तिय लहै, जागै निर फल जाहि ॥२॥

॥ अगले समय के ब्राह्मण भिखारी नहीं होते थे ॥

[प्र०] अरे भाई ! तू जो आजकल के ब्राह्मणों को भीख लेने के कारण बुरा कहता है । सो तू क्या नहीं जानता ? कि पुराने समय में भी तो ब्राह्मण लोग भीख लेतेही थे ॥

[उ०] नहीं, महाराज नहीं ! प्राचीन काल में भी ब्राह्मण भीख नहीं मांगते थे । देखिये ! महाराज परशुराम जी ने कभी भिक्षा ग्रहण नहीं की । श्री महाराज द्रोणाचार्य्य जी और कृपाचार्य्य जी ने, जो कि अत्यन्तोत्तम ब्राह्मण थे, न कभी दान ग्रहण किया और न कभी भिक्षा ली ॥

श्री मान्वर पण्डित श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. डिपुटी कलेक्टर--युक्त प्रदेश और पण्डितवर शुकदेवबिहारी मिश्र बीए. वकील हाई कोर्ट लखनौ कहते हैं। कि-प्राचीन काल के ब्राह्मण यदि वास्तव में भिखारी होते तो वे समस्त हिन्दू जाति में अग्रगण्य कभी न हो सकते । तुलसीदास जी कहतेहैं—

तुलसी कर पर कर करौ—कर तर कर न करौ ।
जा दिन कर तर कर करौ—ता दिन मरन करौ ॥

प्राचीन काल के ब्राह्मण " कर तर कर ,, करके उस के उपलक्ष में न जाने कितना देश का उपकार कर डालते थे पर अब हम लोग सिवा ऐसा करने के और कुछ जानते ही नहीं । यही परिणाम देख कर कदाचित् तुलसीदास जी दान लेना मात्र ऐसा निन्द्य कह गये हैं । इसी कारण हम सहठ कहते कि वर्त्तमान काल के अधिकांश दाता और दानपात्र दोनों पाप के भागी होते हैं। देखो " छपय " पृ० ३४ पं० १७ ॥

पहिले मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मणभी न दान लेते थे । न भिक्षा मांगते थे । न किसी से मन्दिर व मठ बनवा कर आप उसके मठ-धारी बनतेथे।न तीर्थ-पुरोहिताई व कुलप्रोहिताई करतेथे।न आज कलके समान यजमानों के नाम ठाम की बही रखते थे। न यजमानों [दाताओं] और सेवकों [भक्तों] को प्रसन्न करने के लिये उन के सातों [ऊंच से ऊंच और नीच से नीच] कर्म करते थे। न किसी यजमान के अहङ्कारी-गर्वीले वचन सुनते थे । थोड़ेही से दिनों की बात है कि किसी एक राजा ने, एक चौबे जी को ९×९=८१ मन सुवर्ण का दान दिया । किन्तु दान देते समय घमण्ड के मारे राजा के मुख से यह वाक्य निकल गया " अरे पुरोहित ! तू ने मुझसा कोई दानी न देखा होगा,, । यह सुनते ही चौबेजी ने तुरन्त उत्तर दिया । कि "अरे राजा ! तू ने मुझ सा कोई त्यागी भी न देखा होगा,, । इस पर राजा साहब ने चौबे जी का बड़ा शिष्टाचार [खुशामद] किया । परन्तु चौबे जी ने राजा साहब की लल्लोपत्तो पर न ध्यानही दिया। और न अस्सी और एक इक्यासी मन सोना ही लिया ॥

पूर्व समय में मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मण चारों वेदों का पठन पाठन

करते हुए सन्तोष वृत्तिसे रहतेथे । बस यही कारण था। कि वह सारे भूमण्डल की दृष्टि में उच्च थे । और अच्छे २ धर्म्मात्मा पुरुष भी, जैसे श्री रामचन्द्र जी महाराज मर्य्यादा पुरुषोत्तम और श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज महा योगीश्वर, उनकी प्रशंसा करते रहते थे ॥

॥ अच्छे ब्राह्मण प्रतिग्रहं नहीं लेते ॥

अनुमान १५० वर्ष व्यतीत हुऐ होंगे कि एक दिवस श्री मान्यवर पण्डित श्री राघोवा जी दादा ने किसी आवश्यकता के लिये अहिल्याबाई जी से कहला भेजा कि " मुझे कुछ रुपये भेजदीजिये" अहिल्याबाई जी ने उत्तर दिया कि मैं अपने सञ्चित धन पर तुलसी दल रख चुकी हूं। अब मैं उसमें से कुछ भी नहीं लेसकती। क्योंकि वह कृष्णार्पण होचुका है । हां, यदि आप दान लिया चाहैं तो प्रसन्ता से मैं संकल्प करके आपको देसकती हूं। इस पर उक्त पण्डितजी महाराज ने चिढ़ कर = झुंझलाकर लिख भेजा कि "मैं दान लेनेवाला प्रतिग्राही ब्राह्मण नहीं हूं। याती मुझे रुपये भेजो। नहीं तो युद्धकेलिये तत्पर हो" देखो भाषासार संग्रह पहिला भाग पेज ८१॥

नोटस। १—क्या वर्त्तमान समय के दान लेने वाले ब्राह्मण इस वाक्य (मैं दान लेने वाला प्रतिग्राही ब्राह्मण नहीं हूं) पर ध्यान न धरेंगे ?॥

२—क्या उक्त वाक्य दानग्राही ब्राह्मणों का निरादर नहीं करता? हां हां, अवश्य (जरूर) दान लेने वाले ब्राह्मणोंका तिरस्कार = अपमान करता है ॥

* दान ग्रहीताओं के भेद *

दान ग्रहीताओं के विषय में श्रीमान्वर पण्डित भीमसेन जी शर्म्मा

इटावा निवासी मनुस्मृति अ० ४ श्लोक १८९ से १९१ तक के आधार पर अपना भाव प्रगट करते हैं। कि दान लेने वाले ब्राह्मण पांच प्रकार के कहे जासकते हैं॥

ब्रह्मयज्ञादि साङ्गो पांग धर्म कर्म में तत्पर सदाचारी सुपात्र वेद वेत्ता विद्वान् ब्राह्मण को दान देना चाहिये यही सर्वत्र विधान किया जाता है। उन में—

१ = जो पूर्ण धर्मात्मा तपस्वी वेदवेत्ता शुद्धाचरणी होने परभी सभी प्रकार दान लेनेसे बचनेकी चेष्टा करता है वह उत्तममें भी उत्तम है क्योंकि दानको स्वीकार करने से उस के आत्मा में लज्जा संकोचादि प्रविष्ट होके धर्म्म के उत्साह का भंग नहीं करते॥

२ = जो कभी कभी प्रयोजन की अधिकता से निर्वाह के लिये दान ले ले कर भी प्रबल ज्ञान और तप आदि से दान लेने द्वारा होने वाली मन की लघुता तुच्छता मलिनता वा ग्लानि को नष्ट कर देता है वह पहिले से निकृष्ट हुआ भी अधर्म की प्रधानता से उत्तम ही माना जायगा॥

३ = तृतीय जो शास्त्र की मर्यादा को कथमपि जानता हुआ भी लोभ लालच की अधिक प्रबलता से धन का संग्रह करना ही परम कर्त्तव्य-मुक्तिवत् मानता हुआ जिस किसी प्रकार अपनी चतुरतादिसे किन्हीं श्रीमानों को प्रसन्न करता और किसी पर आध्यात्रि करने के बहाने से धन लेता है वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ भी लोकचाल के अनुसार पण्डित ब्राह्मण कहाता हुआ भी शास्त्रानुसार ब्राह्मण वा विद्वान नहीं है किन्तु नीच वा वैश्य माना जायगा॥

४--जो संस्कृत विद्या से शून्य, क्षुद्रग्रन्थ वा भाषा मात्र पढ़ा, लज्जादि को त्याग के पुरोहिताई के नामसे सब कालमें सब प्रकार सब से दान लेने में तत्पर रहता वह चौथा अधम है॥

४ = और जो सर्वथा ही निरक्षर पण्डादि नाम धारी दाताओं को तंग कर कर पीछे पड़ पड़ के दान लेता और उनके सहारे से मद्यमांस वेश्या नृत्यादि करता कराता है वह मनुष्यों में अन्त्यजों के समान ब्राह्मणों में अत्यन्त अधम महा नीच है ॥

नोट = हे दान लेने वालो ! कहो, ऊपर लिखी हुई कक्षाओं में से अब आप अपने को किस कोटि में समझते हो ?

आगे चलकर श्रीयुत पण्डित जी महाराज सुवर्ण, अन्न, गौ, पृथ्वी, घोड़ा, वस्त्र, तिल और घृतादि वस्तुओं के दान ग्रहण से दानग्रहीता = दान लेने वाले को सूखी लकड़ी के समान जलता हुआ बतलाते हैं। और पुनः कहते हैं कि इसीलिये विचारशील ब्राह्मण को चाहिये कि अपने ब्रह्मत्त्व की रक्षा के निमित्त दान लेने का सदा त्याग ही करता रहे अर्थात् दान कभी न लेवे ॥

देखो मानवधर्म्म मीमांसा दूसरा भाग पृष्ठ १७१—१७२

॥ वर्त्तमान समय के भीख मांगने वाले ॥

लोगों को देख कर—

१—श्री मान् वर पंडित श्याम बिहारी मिश्र एम. ए. डिपुटी कलेक्टर--युक्त प्रदेश कहते हैं। कि--" पंगु एवं असमर्थ मनुष्य की कौन कहे अब तो १०० में ८० फ़कीर शक्तिमान भिक्षुक (able bodied paupers) होते हैं जिनका पेशा ही भीख मांगना है,, । देखो " व्यय ,, नाम पुस्तक पृ० १६ पं० १

नोट्--उक्त पंडित जी के उक्त वाक्यों से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि ऐसे समर्थों=हट्टे-कट्टे भिक्षुकों को दान देना व्यर्थ है ॥

२--सम्पादक हिन्दुस्तान--समाचार पत्र ने कहा है। कि--आज कल यह देखने में आता है कि भारतवर्ष के अनेकशः मनुष्यगण गेरुआ रंगे हुए वस्त्र को धारण करके नगर नगर और ग्राम २ में

फिरते हैं और लोगों को भीख देने के लिये विवश करते हैं। क्या यह न्यून लज्जा की बात नहीं है? कि यहां के अधिकांश भिखमंगे सुडौल हाथ पैर और शरीर में परिश्रम करने के योग्य बल को रखने पर भी द्वार द्वार पर भिक्षा के लिये भटका करते हैं। हट्टे कट्टे भिक्षुकों को धन देना हम लोगों की समझ में महा अनर्थ है; क्यों कि इस से देश में आलस्य और निरुद्यमता की वृद्धि होती है। इस पर आर्य्यावर्त्त पत्रका संपादक कहता है। कि-हम अपने सहयोगी के लेख का समर्थन करते हुए इतना और कहेंगे कि ये निरक्षर हट्टे कट्टे भिक्षुक लोगों से धेला पैसा उगाह कर रुपये जमा करते और चांदी काटते है। देखो आर्य्यावर्त्त वर्ष १९ अङ्क २१ पेज ५ कालम ३-४ „

३-मिष्टर ब्लाकट साहब ने निम्न लिखित पद्य में कहा है—

घेर लिया आलस ने आके देखो तुम्हें दिखाते हैं।
बैरागी भारत में बढ़गये भीख मांग कर खाते हैं॥
सतयुग त्रेता द्वापर में बस जो होते थे सन्त महन्त।
वेद शास्त्र सब पढ़के उन को होजाता था ज्ञान अनन्त॥
अब कलयुग में भूख के मारे बन बैरागी फिरें एकन्त।
पन्थ बहुत से चले किया दुर्भिक्ष हुआ भारत का अन्त॥
शेर=है अरज़ सर्कार से दुर्भिक्ष भारत का हरो।
दीन दुखियन की दशा पर कुछ तो अब करुणा करो॥
कारख़ाने खोलदो कहना हमारा चित्त धरो।
दो मजूरी में लगा बस पेट भूखों का भरो॥
नहीं तो सब होजायगे भिक्षुक नज़र कुलक्षण आते हैं।
बैरागी भारत में बढ़ गये भीख मांग कर खाते हैं॥ १॥

त्यागन करके सकल जीविका फिरते बहुरागी बनकर ।
कहने को होगये साध पर नहीं उन्हें ईश्वर की खबर ॥
दुनियाँ के दिखलाने को बस छोड़ दिया अपना घर दर ।
छोड़ के घर को लगे बनाने कुटी और देखो मन्दर ॥
शेर = छोड़ अपना गोत्र अच्युत गोत्र देखो करलिया ।
त्याग के कम्मल औ कथरी ओढ़ बाघम्बर लिया ॥
छोड़के सुत दार भगिनी चेलों को जा पुत्तर किया ।
रांड़ बैठाली वो ला जंगल में जाकर घर किया ॥
फैलाया व्यभिचार हाय निज देश का नाम डुबाते हैं ।
बैरागी भारत में बढ़गये भीख मांग कर खाते हैं ॥ २ ॥
नीच जात बनके बैरागी बिछादिया भारत में जाल ।
गद्दी कोट वाटिका बनाई ठग ठग के लोगों के माल ॥
हाथी घोड़े और पालकी डेरा तम्बू औ सुखपाल ।
खेतों में जो घास काटते महन्त बन बैठे कंगाल ॥
शेर = खाक सब तन पर रमा शिर पर जटा रखवाय के ।
बनगये कनफटा कोई कान को फड़वाय के ॥
ठग रहे दुनियाँ को बैरागी ये भेष बनाय के ।
फूल भैंसा से गये कोई मालपूआ खाय के ॥
गवर्मेण्ट से है ये अर्ज़ी यतन एक बतलाते हैं ।
बैरागी भारत में बढ़ गये भीख मांग कर खाते हैं ॥ ३ ॥
जितने साधू मालदार हैं उनका धन लेकर एक बार ।
जो कुछ उनको होय लगाना धर्म काम में दे सरकार ॥
जभी ये कब्ज़े में आवेंगे भारत का फिर होय सुधार ।
बाक़ी धन कंगालों को दे जो साधू फिरते बेकार ॥

शेर=जो फिरें बेकार साधू हाथ में शमशीर दो ।
और रहने को जगह उनके तई पामीर दो ॥
बस इन्हीं सब मालजादों को उन्हें जागीर दो ।
दुश्मनों से दे लड़ा कर में कमां औ तीर दो ॥
पेश न वो पावेंगे शत्रू जो लड़ने को आते हैं ।
वैरागी भारत में बढ़गये भीख मांग कर खाते हैं ॥ ४ ॥
गवर्मेण्ट से है ये प्रार्थना हम लोगों की वारम्बार ।
वैरागी बेकार हैं जितने उनके कर देकर हाथियार ॥
विन कौड़ी पैसे कि फौज सरकार वो करलेवे तैयार ।
लड़ादे जा दुशमनों से इनको शत्रू सब जावेंगे हार ॥
शेर—जीत जो जावेंगे ये सरकार का होगा भला ।
जो कहीं मारेगये तो पाप भारत का टला ॥
भूख के मारे नहीं ये देह को देंगे जला ।
चोर ये हो जांयगे बदनाम सब होंगे भला ॥
बन्दोबस्त सर्कार करे ये दिन दिन बढ़ते जाते हैं ।
वैरागी भारत में बढ़गये भीख मांग कर खाते हैं ॥५॥
जल्दी इनका बन्दोबस्त हो नहीं तो होगा पछताना ।
कई योजन का लम्बा चौड़ा रचना होगा जेहल खाना ॥
जेल में सब बेकार जांयगे देना होवेगा खाना ।
हसेंगे आलम देश देश के पड़ेगा तुमको शर्माना ॥
शेर-इण्डियाकी जो है आमद जांयगे ये सब बकार ।
फिर कहां से फ़ौज का आवेगा ख़र्चा बेशुमार ॥
सब ख़ज़ाने होंगे खाली सत्य कहता हूं पुकार ।
झेलनी होगी विपत् सर्कार को हो बे क़रार ॥

प्रभू दयाल यों कहैं विलोकट नये छन्द कथ गाते हैं ।
वैरागी भारत में बढ़गये भीख मांग कर खाते हैं ॥८॥

देखो कलियुग वृत्तान्तमाला पेज ९--१०--११

नोट—भीख मांगने वालों को आज कल बहुधा वैरागी ही कहा करते हैं क्योंकि सत्य वैराग्य का धारण करने वाला तो विरला ही मनुष्य होता है ॥

४ — सम्पादक — सद्धर्म प्रचारक सप्ताहिक पत्र ने लिखा है- इङ्गलेण्ड में ऐसे मुफ्तख़ोरों के लिये जो कि काम करने के लायक़ होते हुए भी काम से जी चुराते हैं, यह इलाज निकाला गया है कि अगर कोई शख़्स भीख मांगते हुए पकड़ा जाय और कार्य्यगृह में काम करने से इङ्कार करे तो उसको एक हौज़ में डाल देते हैं इस हौज़ में एक पम्प लगा हुआ है अगर वह पम्प से हर वक़्त पानी निकालता न रहे तो पानी थोड़ी देर में सिर से ऊपर आ जाय इस लिये उसको हाथ हिलाने ही पड़ते हैं और इस तरह वह रफ़्ते २ काम करनेका आदी हो जाताहे बाततोतबहै जबकि आर्य्यावर्त्तकी एक चौथाई भिखारी व मुफ्तख़ोर आबादी की हरामख़ोरी से निजात देने की कोई अमली तद्बीर निकल आवे लेकिन गवर्न्मेण्ट ही अगर इस तरफ़ ख़ास तवज्जह दे तो कुछ बन सक्ता है वरना जिस देश में लाखों नहीं बल्कि करोड़ों मुफ्तख़ोर जोकों की तरह लोगों का ख़ून चूस रहे हों। उस के इफ़लास [कंगाली] का क्या ठिकाना ? देखो सद्धर्म प्रचारक जालन्धर जिल्द १६ नं० ३६ पेज ३ कालम २ तारीख़ १६-१२-१९०४ ॥

५—मिण्टर कारलाइल साहब ने ऐसे भिक्षुकों के विषय में बहुत कुछ लिख कर अन्त में कहा है कि रविवार को और कोई काम नहीं किया जाता सो उसे ऐसे भिक्षुकों की शिकार खेलने में व्यतीत करना

चाहिये । उस के बिचार में ऐसे भिक्षुकों को जान से मार डालना ही श्रेष्ठ है । इस से लेखक का अवश्य ही यह अभिप्राय नहीं कि ऐसे भिक्षुकों को वास्तव में मारही डालना चाहिये वह ऐसा लिख कर इन भिक्षुकों पर अपनी घृणा प्रकट करता है । देखो " व्यय ,, नाम पुस्तक पेज ११ लाइन ६

६—श्री मानूवर पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए. वकील हाई कोर्ट लखनऊ कहते हैं । कि—

हट्टे कट्टे लोगों को दान देना देश और उन सडों दोनों ही को हानि कारक है । देश को इस प्रकार कि उसका उतना धन व्यर्थ नष्ट होता है और उसकी द्रव्योत्पादक शक्ति [जो उन्नति की एक मात्र जननी है] घटती है और उन भिक्षुकों की यों हानि है कि वे पुरुषार्थ के नितान्त अयोग्य हो जाते हैं । आप कहेंगे क्या फ़कीरों को मरजाने दें ? इसका उत्तर यही है कि ऐसे कायर निरुद्यमी पुरुषों का जो देश पर केवल बोझा मात्र है मर जाना ही उत्तम है । इस शरीर से जो मनुष्य कुछ भी लाभ नहीं उठाता है । उस से तो वह पशू भला जो सैंकड़ों काम आता है । देखो " व्यय ,, नाम पुस्तक पृष्टि १७ पंक्ति १९

७—श्री मान् लाला सीताराम जी साहब डिपटी कलेक्टर संयुक्त प्रदेश कहते हैं । कि—लोभी भिखारियों को कभी घर के अन्दर भी न आने दे क्यों कि फिर उनका घर से बाहर करना कठिन हो जाता है । यथा— ॥ दोहा ॥

लोभी याचक हित नहीं । उचित खोलिवो द्वार ।
खोलै पै फिर सहज में । बन्द न होत किवार ॥ १ ॥

❀ आर्य्यावर्त्त में ५२ लाख भिक्षुक ❀

प्र०—यहां भारतवर्ष में इतने भिखारी क्यों हैं ? जब कि जापान तथा अमेरिका में एक भी भिखमङ्गा नहीं है ॥

उ०—उन देशों में भीख मांगना पाप है। उन देशों के लोग भीख मांगने को पाप ही नहीं बरन अत्यन्त निन्दनीय कार्य्य समझते हैं। परन्तु यहां आर्य्यावर्त्त में तो भिक्षाटन उत्तम कर्म्म और श्लाघनिय गिना जाता है। बल्कि ऐसा समझा जाता है कि भिक्षाटन करते करते मर जाने से स्वर्ग मिलता है। यहां के=भारत वर्ष के ब्राह्मणों ने तो, जो ईश्वर के मुख बन बैठे हैं। और स्वर्ग लोक की कुञ्जी को अपने हाथ बतलाते हैं। इस को=भीख मांगने को अपना धर्म्म ही समझ रक्खा है। यथा—

ब्राह्मण के धर्म्म केवल भिक्षा ॥ १ ॥

और भी

तजि अभिमान धर्म जप तप को जहं तहं कहैं द्विजेशा।
लेवो दान मांगिवो भिक्षा अहै हमारो पेशा ॥ २ ॥

बस इन्हीं ब्राह्मण लोगों की देखा देखी भारतवर्ष की अन्य जातियोंमें भी भीख मांगनेकी प्रथा प्रचलित होगई। कहावत भी है। कि-

जब अगुआ खराब ।
तो पछुआ का क्या हिसाब ॥ ३ ॥

बस यही कारण है कि इन अपढ़, आलसी, अज्ञानी और अभिमानी ब्राह्मनों की बदौलत (कारण) यहां = हिन्दुस्तान में १ करोड़ के आधे ५० और २ बावन लाख मनुष्य भिखमंगे बन बैठे ॥

और आगे को अगर यह भीख मांगने की कुचाल न रोकी गई तो थोड़ेही से दिनों में यहां भिखमंगेही भिखमंगे दृष्टि आवेंगे। और यह भारतवर्ष, जो आचार्य्यों का स्थान कहलाताथा, भिखारियों का घर कहलाने लगेगा ॥

नोट—मुश्किल तो यह है कि अगर कोई भला आदमी इन भिखा-

रियों से विद्या पढ़ने या बनज व्योपार करने को कहे तो यह मुफ़्त
ख़ोरे उसको नीचे लिखे हुए फ़िकरहों में सूखा जवाब दे देते हैं ॥

पढ़ना कैसा लिखना कैसा । मांगब भीख पाउब पैसा॥१॥
मांगब भीख लाउब आटा । पढ़वैया को परिहै घाटा ॥२॥
खेती करैं न बनजे जांय । भिक्षा के बल बैठे खांय ॥३॥
सब से सिरैं भीख के रोट । हो विद्या की फिक्र न मनकोचोट४
पढ़ेंगे लिखेंगे तो होंगे ख़राब । मांगेंगे मूंगेंगे तो होंगे नवाब॥५॥
ओ. ना. मा. सी. धम् । हमारे बाप पढ़े ना हम् ॥६॥
अलिफ़. बे. पे. ते । मियांजी पढ़ाते । पर हम नहीं पढ़ते ॥७॥
ए. बी. सी. डी. ऐफ. एच. आई । पर हम कबहू पढ़न न जाई॥८॥
पढ़ २ के पत्थर भये, लिख २ के भये ईंट ।
गुन २ के गारा भये, रहे भीट के भीट ॥९॥
हिन्दी पढ़ैं न फ़ारसी, करैं न कबहु सतसङ्ग ।
जब होय कृपा गोपाल की, खावैं पेड़ा पीवैं भङ्ग ॥१०॥
हम लोगन के वंश में होइं नहीं गुणवान ।
निगलें लडुआ गटकें पेड़ा जै बोलैं जिजमान ॥११॥

अरे ! हम ब्राह्मण हैं । क्या तुम नहीं जानते ? कि ब्राह्मणों के लिये कृष्ण कहते हैं—अविद्योवा सविद्योवा ब्राह्मणो मामकी-तनुः ॥ १२ ॥

अरे ! हमारी प्यारी जमना मैया जसुमत दैया के प्यारे कृष्ण-कन्हैया बलभद्र भैया के छैलछैया भोले भाले बम्भोले जब हमको प्रतिदिन सोने—चांदी के गोले भेजते रहते हैं अर्थात् बम्भोला की कृपा से कोई न कोई गांठ का पूरा और आंख का अंधा=निर्बुद्धि आकर लडुआ पेड़ा खवाय ही जाता है तो हम विद्या पठन का कठिन कष्ट क्यों व्यर्थ सहन करें ? ॥ १३ ॥

अरे ! हम पढ़ने (विद्या प्राप्ति) के हेतु घोखने और स्मरण रखने के लिये, जो कि लोहे के चने चाबने के तुल्य हैं, अपने अपरिमित बलवान बल को; जो कि लडुआ--पेड़ा खाने, भांग--ठंडाई पीने और कसरत्त--कुश्ती करने के लिये है, क्यों व्यर्थ व्यय करें ? जब कि राधा की बाधा के हरनेवाले, दधि और माखन के चुराने वाले, गोपियों से प्रेम रखने वाले, ब्रज की नारियों के संग नाचने वाले (था थेई थेई था) और उनकी खिराकियों को खट खट खटखटाने वाले, चोरों और जारोंके जेनरेल यशोदा-नन्द नन्दन आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र श्री कृष्णचेन्द्र भगवान, जोकि चौबीसों औतारों में श्रेष्ठ= प्रधान सोलह कला परिपूर्ण साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा हैं, ने हमको अपने समान मान = जान सारे जहान के लोगों को हमारी सेवा करने की आज्ञा दी हुई है । यथा—

॥ चौपाई ॥

विप्रन के सेवक व्है रहियो । सब अपराध विप्रन को सहियो
ब्राह्मण माने सो मोहि माने । ब्राह्मण औ मोहि भिन्न न जानें॥

देखो श्री मद्भागवत ॥

॥ महात्मा मुनशी रामजी के वाक्य ॥

श्री मान् महात्मा मुनशीराम जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी- हरिद्वार तो यहां तक कहते हैं । कि---

जो क़ौम सदा मांगती ही रहती है और अपने फ़रायज से सर्वथा ग़ाफ़िल रहती है, वह कभी भी उन्नती नहीं कर सक्ती और संसार का इतिहास भी हमें यही शिक्षा देता है कि ऐसी (मांगनेवाली) क़ौमों ने कभी उन्नती नहीं की गदागिरी का एक लाज़िमी नतीजा यह होता है कि गदागरों के मनों में से उत्तम सन्मान का उच्चभाव बिल्कुल लोप होजाता है और कमीनगी का प्रादुर्भाव होता है ॥

देखो सद्धर्म्म प्रचारक जिल्द १७ नम्बर ५२ पेज ५ का० १

* ईश्वर से भी न मांगो *

बहुधा मनुष्य कहा करते हैं। कि—सन्सार से मांगना बुरा है। क्योंकि उसमें अपमान होता है। किन्तु ईश्वर से बल, बुद्धि, सम्पति, सन्तान, यश, निरोगता, प्रधानता और मोक्ष आदि सुख और पापों की क्षमा मांगना भला है। यथा—॥ दोहा ॥

बुरौ मांगिवो जगत में, जाते हो अपमान।
क्षमा मांगिवो ईशतें, भलो एह करि ज्ञान ॥१॥

और वह लोग यह भी जानते हैं कि परमेश्वर उनको उनके कर्मानुसार फल [सुख-दुःख] देता है। यथा—॥ दोहा ॥

को सुख को दुख देत है, देत कर्म झक झोर।
उरझे सुरझे आपही, ध्वजा पवन के जोर ॥१॥
ग्रंथ पंथ सब जगत के, बात बतावत दोय।
दुख देवत दुख होत है, सुख देवत सुख होय ॥२॥
जैसी करनी जगत में, कीन्हीं नर तन पाय।
तैसी रोज विचार कें, भोग करोगे आय ॥३॥
कर्महि शीश नवाइये, जाके बस तिहुं लोक।
रवि शशि विधि हरि हरहु डिय, करत हर्ष अरु शोक ॥४॥
कर्म किये फल होत है, जो मन राखो धीर।
श्रम करि खोदत कूप ज्यों, थल में प्रगटत नीर ॥५॥
श्री को उद्यम के बिना, कोऊ पावत नाहिं।
लिया रतन अति यतन सों, सुर असुरन दधि माहिं॥ ६॥
दुखद सुखद निज कर्म जग, और न दूजो कोइ।
कटुक कहै रिपु ऊपजै, मधुर कहै हितु होइ ॥७॥

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ ।
रोपै पेड़ बबूल को, आम कहाँ ते होइ ॥ ८ ॥
कर्म हेतु हरि तन दियो, ताते कीजै काज ।
दैव थापि आलस करै, ताको होय अकाज ॥ ९ ॥
कीन्हे बिना उपाय कछु, दैव कबहुं नहिं देत ।
जोति बीज बोवै नहीं, किहि विधि जामै खेत ॥ १० ॥
बिना सोत नहिं होत है, पानी कूपहि माहिं ।
त्यों उपाय बिन भाग्य है, सब नारी नर माहिं ॥ ११ ॥
दैवा धीन न बैठ निज, बुधि बल करिय उपाय ।
ईश्वर अन्न दियो सबहि, नाहीं देत पकाय ॥ १२ ॥
दैव दैव करि मूर्ख जन, कछु न करैं व्यवसाय ।
निकट असन बिन करचले, कहु किमि मुख में जाय ॥ १३ ॥
दैव चितवनी धारि करि, उद्यम त्यागे नाहिं ।
बिन उद्यम कहु कौन को, मिलै तेल तिल माहिं ॥ १४ ॥
मृगा पड़े नहिं बाघ के, मुह में आपुहि आय ।
पक्षी मिलै न बाज को, जो नहिं करै उपाय ॥ १५ ॥
होय बुराई तें बुरौ, यह कीने निरधार ।
खाड खनेगो और कौं, ता कौं कूप तयार ॥ १६ ॥

॥ सोरठा ॥

दूध न पावत बाल, बिन रोदन फल पाक भी ।
मुख न आव ततकाल, यातें जतन अवश्य कर ॥ १७ ॥

॥ चुटकुला ॥

जैसा करै सो तैसा पावै । पूत भतार के आगे आवै ॥ १८ ॥
जैसे कार करना । वैसे भार भरना ॥ १९ ॥
जैसी करनी । वैसी भरनी ॥ २० ॥

जैसा बोओगे । वैसा काटोगे ॥२१॥
जैसा बोलोगे । वैसा सुनोगे ॥२२॥
जैसा दोगे । वैसा लोगे ॥२३॥

१=श्री गोसांई तुलसीदास जी कहते हैं— ॥ चौपाई ॥

कर्म प्रधान विश्व कर राखा । जो जस करै सो तस फल चाखा२४

१=श्री रामचन्द्र जी ने भी कहा है— ॥ चौपाई ॥

काल रूप तिन कहँमैं भ्राता।शुभ अरु अशुभ-कर्मफल दाता॥२५॥

१=एक और महात्मा कहते हैं—

अवश्यमेव हि भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम् ।
ना भुक्तं क्षीयते कर्म्म कल्प कोटि शतैरपि ॥२६॥

अर्थ=बुरे भले किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ताहै करोड़ों वर्ष होने पर भी किये हुए कर्म बिन भोगे नहीं मिटते ॥ क्या अब भी कु कर्म करके उनके फल न भोगने की प्रार्थना ईश्वर से करोगे और क्या वह क्षमा कर देगा ? नहीं १ वह क्षमा कभी नहीं करेगा ॥

४=महा योगीश्वर श्री कृष्ण देव जी महाराज कहते हैं। कि--कर्म्म करके ही जीव जन्म धारण करता है, मरता है और सुख, दुख, भय और आनन्द पाता है ॥ १ ॥ कर्म्म करके ही जीव ऊंची, नीची, (अच्छी बुरी) देह को प्राप्त होता है। शत्रुता, मित्रता, और उदासीनता को पाता है और गुरू बनता है ॥ २ ॥ यथा--

कर्मणा जायते जंतुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुखं भयं क्षेमं कर्मणै वा भिपद्यते--१ ॥२७॥
देहान्नुचाव चान् जंतुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ।
शत्रु र्मित्र मुदासीनः कर्मै व गुरुरीश्वरः--२ ॥२८॥

देखो श्री मद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय २४ श्लोक १३ और १७

९–महर्षि दयानन्द जी ने भी कर्त्तव्य = करणी [कर्म] के द्वारा ही मनुष्य को सुख दुःख की प्राप्ति का होना बताया है। यथा—

१–जो कोई [मनुष्य] दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे। क्यों कि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूल कारण है। ॥ २९ ॥

देखो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २४४ पंक्ति ७–९

एक मनुष्य ने महर्षि से प्रश्न किया कि परमात्मा ने प्रथम ही से जिस के लिये जितना देना विचारा है उतना देता और जितना काम करना है उतना करता है। इस पर महर्षि कहते हैं—

२—उस का (ईश्वर का) विचार जीवों के कर्मानुसार होता है अन्यथा नहीं जो अन्यथा हो तो वही (ईश्वर) अपराधी अन्याय कारी होवे ॥ ३० ॥ देखो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १४९ पंक्ति ११–१४ ॥

इसी प्रकार महर्षि ने फिर कहा है—

३—पूर्व जन्म के पाप पुण्यों के बिना उत्तम, मध्यम और नीच शरीर तथा बुद्धि आदि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते ॥ ३१ ॥

देखो वेद भाष्य भूमिका पृ० २१९ पंक्ति १२—१३ ॥

४—ईश्वर न्यायकारी होने से किसी को बिना कारण से सुख वा दुःख कभी नहीं देता ॥ ३२ ॥ देखो वे. भा. भू. पृ. २१९ पं. १०-११

५—जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उस को वैसाही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् [केवल प्रार्थना (याचना) के भरोसे पर ही न रहना चाहिये] ॥ ३३ ॥

देखो सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १८७ पंक्ति ११–१२ ॥

आगे चल कर आप स्पष्ट रूप से कहते हैं—

६—जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वे महा मूर्ख

हैं क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उस को जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा ॥ ३४ ॥

देखो सत्यार्थ प्रकाश पृ० १८७ पं० २३–२६ ॥

महर्षि के कथन का मथन यह है । कि–परमेश्वर अपनी ओरसे जीवों को न सुख देता है और न दुःख । किन्तु परमात्मा जीवों को उन के कर्म अनुसार सुख दुःख पहुंचाता है अर्थात् सुख दुःख का प्राप्त करना शुभाशुभ कर्मों करके मनुष्य के स्वयं आधीन है ॥

६–भर्तृहरि जी कहते हैं—

१–मनुष्यों को उनके कर्मानुसार फल और बुद्धि मिलती है । यथा—

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥३५॥

अर्थार्द्ध-दोहा–फलहू पावत कर्म ते । बुधहू कर्म अधीन ॥३६॥

२—वन में, लड़ाई में, शत्रु, जल और अग्नि के मध्य में, समुद्र में, पहाड़ की चोटी पर, सोते हुए, बे सुधि में और विषम अवस्था में केवल पूर्व जन्मके किये हुए कर्म ही मनुष्यकी रक्षा करतेहैं । यथा—

वने रणे शत्रु जलाग्नि मध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमास्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥३७॥

अर्थ–दोहा ॥–वन रण जल अरु आग्निमें गिरि समुद्रके मध्य
निद्रा मद औरहि कठिन पूरव पुण्याहि सध्य ॥३८॥

३—जिस मनुष्य के पूर्व जन्म के (किये हुऐ सुकर्मो का फल) पुण्य बहुत होता है उस पुरुष के लिये भयानक वन सुन्दर नगर होजाता है, सब दुष्टजन मित्र-होजाते हैं और सब पृथ्वी अनेक रत्नों से पूर्ण होजाती है । यथा—

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं ,
सर्वो जनः सुजन तामुपयाति तस्य ।

कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्न पूर्णा

यस्यास्ति पूर्वं सुकृतं विपुलं नरस्य ॥ ३९ ॥

अर्थ-दोहा-॥वन पुर व्है जग मित्र व्है कष्ट भूमि व्है रत्न ।

पूरब पुण्याहि पुरुष के होत इते विन यत्न ॥ ४० ॥

अब इस निम्न वाक्य में भर्तृहरिजी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनुष्यों को बल बुद्धि आदि सुखों की प्राप्ति के लिये सुकर्म करने चाहिये न कि ईश्वर से याचना करना = मांगना ॥

४-देवताओं को हम नमस्कार करते हैं परन्तु वेभी विधिके आधीन हैं, हम विधि को नमस्कार करतेहैं परन्तु विधाता भी हमारे करमोंके अनुसार ही फल देता है, इसलिये जब देवता और विधि दोनोंही कर्म के आधीन हैं तब उनसे क्या प्रयोजन है? (अर्थात् हम उनसे क्यों मांगे अर्थात् हमको परमेश्वर से नहीं मांगना चाहिये) हम तौ कर्मको ही (बड़ा मानकर) नमस्कार करते हैं, जिस पर विधाता का भी वश नहीं चल सकता । यथा-

नमस्यामो देवान्न तु हतविधेस्तेऽपि वशगा ,

विधिर्वन्द्यःसोऽपि प्रति नियत कर्मै कफलदः ।

फलं कर्मायत्तं किम मरगणैःकिं च विधिना ,

नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥४१॥

अर्थ-दोहा॥-वन्दन सबही सुरनकूं विधिहू कों दण्डौत ।

कर्मन कौ फल देत ये इनकौ कहा उदोत ॥४२॥

७—चाणक्य जी कहते हैं—

१—जीव आपही कर्म करता है और उन किये हुए कर्मों का फल भी आपही भोगता है, आपही संसार में भ्रमता है और आपही उस से मुक्त होता है । यथा=

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

इस उक्त वाक्य का तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य स्वयं बुरे भले कर्म करके दुःख सुख प्राप्त कर सकता है न कि ईश्वर से मांग करके ॥

८—एक महात्मा ने किसी एक मनुष्य को ईश्वर से धन की याचना करते हुए देख कर कहा। कि—अरे मूर्ख ! धन परमेश्वर से मांगने से नहीं मिलता। किन्तु सुकर्म अर्थात् पुरुषार्थ करने से प्राप्त होता है। यथा—

उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मी,
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं विहाय कुरुपौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥४४॥

अर्थ-लक्ष्मी पुरुषार्थी पुरुष सिंहको ही प्राप्त होती है. दैव देगा [ईश्वर देगा] ऐसा आलस्य ग्रस्त खोटे पुरुष कहते हैं। दैव को त्याग कर सामर्थ्य भर श्रम कर, यदि पुरुषार्थ पर कार्य सिद्धि न हो तो [अत्र यत्ने को दोषः] हमारे परिश्रम में क्या न्यूनता रहगई, जो यह कार्य सिद्ध न हुआ, ऐसा पुरुष को विचार करना चाहिये। परन्तु ईश्वर से कदापि न मांगना चाहिये ॥

॥ दोहा ॥

पुरुष सिंह जे उद्यमी , लक्ष्मी ताकी चेरि ।
भाग्य भरोसे ते रहैं , कुपुरुष भाषहिं टेरि ॥४५॥
दैव दैव कर मूर्ख जन , कछु न करैं व्यवसाय ।
क्योंकर कर डोले बिना , कवर पेट में जाय ॥४६॥
श्रम कीन्हें धन होत है , धन ही सुख को मूल ।
व्यवसाई अरु चतुर नर , उद्यम को मत भूल ॥४७॥

श्रम कीन्हें सुख मिलत है, बिन उपाय नहिं भोग।
दैव दैव करि आलसी , भोगत हैं दुःख शोग ॥४८॥

९--एक विद्वान ने एक मनुष्य से, जो कर्मों को नहीं मानता था और केवल ईश्वर ही को सुख दुःख का दाता जानता था, निम्न लिखित प्रश्न किये हैं ॥

॥ दोहा ॥

झूठ होत जो कर्म फल , यह विचार मन मांहि।
दुःखी सुखी भल पोच सब , एक रंग कस नाहिं ॥४९॥

॥ लावनी ॥

एक सुखी एक दुखी बनाया एक धनी निर्धन कंगाल।
ऊंच नीच क्यों पुरुष बनाये एक दयालू एक चंडाल ॥५०॥
सब जीवों पर सम दृष्टी क्यों रहा न इसका कहिये हाल।
अगर कहोगे अपने भक्तको वह रखता हरदम खुश हाल॥५१॥
करैं बुराई जो ईश्वर की उसे देत दुःख अति विकराल।
तौ खुशामदी हुआ ईश्वर बड़ा दोष यह करिये ख्याल॥५२॥

१०--एक परिव्राजक ने एक बनावटी बैरागी से, जो कि परमानन्द की प्राप्त के लिये राम दे. राम दे पुकार रहा था, कहा कि अरे मूढ़! राम दे. राम दे कहने से परमानन्द नहीं मिलता। परमेश्वर पैमांगने से नहीं मिलता। हां! यदि तू उपाय=अपने चंचल मन का दमन करेगा तो अवश्य किसी समय पालेगा। यथा--

॥ दोहा ॥

जो गूदा खाया चहै , छिलका तोड़े आप।
परमानन्द के लाभ हित , निज मन पै कर दाप॥५३॥

नोट--दाप के अर्थ दाब दबाव॥

५१--श्री मान् मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी ईसाइयों को ईश्वर से मांगते हुए—

१--रोज़की रोटी आज हमें दे [रोटी अर्थात् आत्मिक वा शारीरक भोजन] ॥

२--हमारे अपराध क्षमा कर [अपराध अर्थात् आत्मिक वा शारीरक पाप] ॥

देख कर कहते हैं कि ईश्वर बिना कर्म के न किसी को रोटी देते हैं । और न किसी का अपराध क्षमा करते हैं । देखिये ! ईसाइयों को रोटी तबही मिलती है जब कि वह हल चलाते हैं, अनाज पीसते और रोटी पकाते हैं । यदि मांगने ही से रोटी मिल जाती तो वह इतने काम क्यों करते ? इसी प्रकार ज्ञान=बुद्धि भी तबही उन को मिलता है जब कि वह लोग मिशन स्कूल और कालिजों में रात दिन पढ़ते हैं। हमारे अपराध क्षमा कर यह प्रार्थना=मांगना भी उनका सत्य नहीं। क्योंकि, कोई बुद्धिमान इस बात को नहीं मान सक्ता, कि ईश्वर जिसके गुण, कर्म और सुभाव अखण्ड एक रस हैं और जो न्याय द्वारा जीवों के कर्मों का फल प्रदाता है वह कभी किसी के पाप क्षमा करने से अन्याय करता हुआ अन्य जीवों को पाप के अथाह समुद्र में गिरने का इस प्रकार साहस दे सके । ईश्वर पापों को कभी क्षमा नहीं करता; किन्तु निर्पक्ष होकर यथावत् दण्ड देता है ॥ ५४ ॥

नोट=फिर न मालूम लोगबाग सुकर्मों को न करते हुए ईश्वर से क्षमा क्यों मांगते हैं ॥

कोई भी (वैदिक) मंत्र ईश्वर से पदार्थों को मांगने द्वारा प्राप्त कर ने का उपदेश नहीं देता ॥ ५५ ॥

जो २ पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना=याचना के साथ चाहते हैं, सो सो हमारे अत्यन्त पुरुषार्थ द्वारा प्राप्ति होने (मिलने) योग्य हैं,

केवल प्रार्थना = याचना मात्र से नहीं ॥ ५६ ॥

मनुष्य जिस बातकी प्रार्थना करता उसको वैसाही वर्तमान करना चाहिये । नकि केवल याचना मात्र के भरोसे पर ही रहना चाहिये ॥ ५७ ॥

१२ = कलिपई साहब कहते हैं कि मनुष्य उन पापोंके कारण दुःख पाते हैं जिनको रोकना उनकी सामर्थ में है अथवा अविद्या के कारण मनुष्य दुःख के भागी बनते हैं ॥ ५८ ॥ इस से सिद्ध होता है कि मनुष्य विद्या करकेही सब सुख मोक्ष पर्य्यन्त प्राप्त कर सक्ता है नाकि केवल ईश्वरसे याचना करने से ॥

१३ = हौआईविलयम्स साहब कहतेहैं कि सर्व युगोंमें मनुष्यान्नाति और मुक्तिके विघ्न अज्ञान और स्वार्थपन ही रहे हैं ॥ ५९ ॥ यादि मनुष्य इन कुकर्मों को न कर सुकर्म करे तो प्रत्येक प्रकार की वृद्धि कर सक्ता है अर्थात् ईश्वर से मांगना व्यर्थ है ॥

१४ = सेनेकासाहब इटली देश के रहने वाले कहते हैं कि हम कब तक ईश्वर से अपने भोगविलास मांगते जायेंगे? क्या हमारे पास सामग्री नहीं है? जिससे कि अपना निर्वाह कर सकें ? ॥ ६० ॥ इसका भी तात्पर्य्य यही है कि मनुष्य को ईश्वरसे कदापि न मांगना चाहिये ॥

१५—कपिलाचार्य्य जी कहते हैं कि तीनों प्रकार के दुःखों की निवृत्ति यथार्थ पुरुषार्थ से हो सकती है न कि ईश्वर पै मांगने से ॥ ६१ ॥

१६—पतञ्जली जी कहते हैं कि ईश्वर प्राप्ति के लिये अष्टांग योग का साधन करना चाहिये न कि ईश्वर से मांगना ॥ ६२ ॥

१७—भृगु जी मनु जी के वाक् स्मृति में सुख प्राप्ति के लिये कर्त्तव्य करने का उपदेश दे गये हैं न कि ईश्वर से मांगने का ॥ ६३ ॥

१८—ऋषि, मुनि वर्णाश्रम धर्म्म के सेवी और नित्य और

नैमित्तक कर्म्मों के करने वाले कभी न होते, यदि वह पाठ मात्रसे= मांगने से ही सिद्धि समझते ॥ १४ ॥

१९—एनी बिसेण्ट कहती है-(१) पृथ्वी पर उन्नति के साधन बिना विद्या और सुकर्म्मों के कोई नहीं हैं। (२) अनेक वर्ष पर्य्यन्त मनुष्यों ने प्रभु से प्रार्थना की कि निरधनता, दुःख और पाप दूर हों, परन्तु निरधनता, दुःख और पाप सर्वत्र पाया जाता है । मनुष्य ही पृथ्वी को उत्तम बनाने के लिये वह सुकर्म्म करेंगे जो कि प्रार्थना=याचना नहीं कर सक्ती अर्थात् मांगने से कुछ नहीं बनता ॥६५॥

२०—डेविस साहब पाताल=अमरीका निवासी कहते हैं—निरधनता पाप, पराधीनता और रोग निवृत्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करना= मांगना ठीक नहीं है । क्योंकि यह सब विकार मनुष्य कृत हैं । यह दुःख मनुष्य ने ही उत्पन्न किये हैं । और मनुष्य ही इन को नाश करेगा सुकर्म करके ॥ ६६ ॥

उक्त साहब फिर कहते हैं कि यदि तुम [मनुष्य] भोजन पचाने, आकर्षण करने, मैथुन और गमन आदि के नियमों का उल्लंघन करोगे तो तुम्हें अपने कर्म का फल अवश्य मिलेगा, कोई भी अपराध [मांगने से] क्षमा नहीं हो सकेगा ॥ ६७ ॥

२१—कारलायल साहब कहते हैं—अपना काम करते जाओ और फल की चिन्ता न करो अर्थात् न मांगो। कर्म्मोंके फल देनेकी चिन्ता तुझ से एक महान् शक्ति [ईश्वर] को लग रही है ॥ ६८ ॥

२२—बाबू केशव चन्द्र सैन कहते हैं-वर्षा, अन्न, वृद्धि, आरोग्यता, आयु और शारीरक सुख के लिये पाठमयी प्रार्थना करना अर्थात् परमेश्वर से मांगना निष्फल है ॥ ६९ ॥

२३—एनी बिसेंट फिर कहती है कि कोई भी पाठमयी प्रार्थना [मुख द्वारा ईश्वर से मांगना] उस आत्मिक बल को प्राप्त नहीं करा

सक्ती, जो कि नित्य के प्रयत्न और सन्तोषमय शुभ कर्म्मों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है ॥ ७० ॥

२४—एक समय सन् १८५३ ई० के लगभग जब इंगलेण्ड में विशूचिका (हैज़ा) फैल गया तो एडनबरा नगर के पादरी ने लार्ड पामरस्टन को पत्र भेजा कि इंगलेण्ड से हैज़ा भगाने के लिये प्रार्थना करने=ईश्वर से मांगने का एक दिन नियत कर दीजिये! लार्ड पामरस्टन ने उत्तर में यह कहा कि अपने परनालों=मोरियों का प्रबन्ध करो। प्रार्थना = याचना (मांगने) से कुछ नहीं होगा ॥ ७१ ॥

२५=एक समय एक बनिया नाम बुद्धू पुत्रोत्पन्न होने की लालसा में एक भले साधू नाम गंगाराम के पास जाया करताथा जब बनिये को जाते२ बहुत दिवस व्यतीत होगये तो एक दिन गंगा राम ने कृपा करके बनियेसे उसका सारा वृत्तान्त पूछकर कोई लखंडी [औषधि] उसको उसकी स्त्रीके रोगनिवारणार्थ देते हुए कहा कि लो लालाजी ! अब तुम यह औषधि स्त्री को खिलाना राम आसरे से बेटाही होगा। लालाजी प्रसन्नता पूर्वक निज गृहको चलने लगे। जब लालाजी कुछ दूर चले गये तो साधूजी ने फिर बुलाकर कहा— अरे बुद्धू ! केवल रामभरोसही न रहना किन्तु कमर को भी हिलाते रहना। अहा ! क्या अच्छा दृष्टान्त है। क्या बिना कर्म किये हुए परमेश्वर पै केवल मांगनेसे कार्य्य सिद्ध होसक्ता है ? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। यदि नहीं तो फिर ईश्वरसे कभी न मांगना चाहिये ॥ ७२ ॥

२६ = जबसे मेरे प्यारे भारतवर्षियों ने पुरुषार्थ द्वारा कर्म करना त्याग दिया और केवल पाठमयी प्रार्थना अर्थात् केवल मुखद्वारा इधर उधर की निरर्थक तुकें जोड़ कर स्तुति करते हुए परमेश्वर से मांगना लेलिया तबही से इनके तन, धन, धर्म, धना, धान, धाम और धरती

सब नष्ट होने लगे। जिसके सहस्रों दृष्टान्त मुझे मालूम हैं। परन्तु अब यहां स्थानाभाव के कारण मैं आपको केवल दो चार ही सुनाता हूं॥ ७३॥

१—सन् १००८ ई० में महमूद ग़ज़नवी ने जब नगरकोट को जाघेरा तो वहांके निवासियों ने लड़ने के बजाय नगरकोटदेवी से महमूद को पीछे लौटा देनेकी प्रार्थना की। देवी ने तो प्रार्थना न सुनी किन्तु महमूद वहांसे सात लाख दीनार सातसौ मन सोने चांदी का असबाब दो सौ मन निरा सोना दोहज़ार मन चांदी और बीस मन जवाहिर लेगया॥

२—सन् १०११ ई० में जब महमूद ग़ज़नवी कुरुक्षेत्र पर चढ़ कर आया तो वहां के पण्डों ने लड़ने का पुरुषार्थ न करके केवल थानेस्वर महादेव से प्रार्थना = याचना करना प्रारम्भ किया जिसका फल यह फला कि महमूद ने फ़तह पाई। और शहर को लूटकर सारामाल, जिसमें एक माणक भी साठ तोले काथा, और जहांतक हिन्दू उसके हाथ लगे लौंडी गुलाम बनाने को ग़ज़नी लेगया॥

३=सन् १०१८ ई० में महमूद ग़ज़नवी ने मथुरा पर की चढ़ाई। मथुरानिवासियों ने कृष्णबलदेव और जमना की जै मनाई। पर लड़ाई लड़नेकी कोई बात न बनाई। तब महमूद ने २० दिन तक लूट मचाई। सारी मूरतें तुड़वाई। और मन्दिरों में बुरे बुरे काम करके पिचकारी चलाई। अंत को वहां १०० ऊंट केवल तोड़ी हुई चांदी की मूरतों से भरके लेगया पांच निरी सोने की थीं उनमें एक का वज़न हमारे अबके चार मन से भी अधिक था और साथ ही इस के यहां से पांच हज़ार तीन सौ आदमियों को भी पकड़ कर लेगया और ग़ज़नी पहुंच कर उन्हें एक एक दो दो रुपये पर बेचडाला। उस समय मथुरा में एक बहुत बड़ा देवल था जिसकी तारीफ़ में मह-

मूद ग़ज़नवी ख़ुद कहता है कि अगर कोई ऐसा देवल बनाना चाहे तो दस करोड़ सुर्ख़ दीनार ख़र्च करने से भी न बनेगा और अगर निहायत लाइक़ और होशयार कारीगर मुक़र्रर किये जायें तो दो सौ बरस लगेगा। ख़ुद उसका मुंशी तारीख़ यमीनी में लिखता है कि न उसका बयान हो सकता है न तसवीर उतर सकती है। इस देवल को महमूद ने आग से जलाकर ज़मीन के बराबर करदिया॥

४—इसी साल महमूद ने महावन पर हमला किया। महावन के राजाने लड़ने का उपाय न किया। किन्तु नन्दनन्दन पै अपनी पाठ मयी प्रार्थना से भरोसा किया। यशोदा नन्दन ने प्रार्थना का ख़्याल न किया तब राजाने अपने बालबच्चों को मारकर अपना आत्मघात किया। और महमूद ने महावन के सारे शहर को क़तल किया। और लूट के माल असबाब को जो लाखों का था ग़ज़नी को रवाने किया॥

५—सन् १०२४ ई० में महमूद ने पट्टन सोमनाथ पर चढ़ाव किया अब तो यहां वाले उसका नाम तक भी भूल गये पर उस समय वह इस देश के मुख्य तीर्थों में गिना जाता था गुजरात के प्रायद्वीप की दक्षिण सीमा पर समुद्र के किनारे सोमनाथ महादेव का बड़ा भारी मन्दिर बना था छप्पन खम्भे उस में जवाहिर जड़े हुए लगे थे दो सौ मन भारी सोने की ज़ंजीर से घण्टा लटकता था दो हज़ार गांव उसके ख़रच के वास्ते मुआफ़ थे दो हज़ार पंडे वहां के पुजारी गिने जाते थे ५०० औरतें और १०० मर्द गाने बजाने वाले नौकर थे १०० नाई मूड़ मूड़ने के लिये थे ग्रहन के समय दो लाख से अधिक यात्रियों का समूह हो जाता था राजे महाराजे अपनी लड़कियों को ख़िदमत के लिये भेजते थे और ज़ेवर जवाहरात भारी भारी कपड़ों का चढ़ावा चढ़ाते थे ग़रज़ मंदिर में इतनी दौलत थी कि उसका कुछ हिसाब न था। तीर्थ स्थान समुद्र के आस पास के

बहुतेरे राजा उसके बचाने को इकट्ठे हो गये एक तवारीख़ वाला राजपूतों की शुमार ३० लाख बतलाता है और महमूद की फ़ौज की गणना ३० हज़ार लिखता है अर्थात् १०० हिन्दुओं के मुक़ाबले पर केवल एक यवन था। परन्तु महादेव के पण्डों ने राजपूतों को न लड़ने दिया और सोमनाथ महादेव से जिसको वह ईश्वर मानते थे अपनी जीत के लिये याचना की। बस उस निरर्थक याचना का यह सिद्धान्त हुआ कि सारे राजपूत तो भाग गये और महमूद ने फ़तह पाकर सोमनाथ माहदेव की मूरत तोड़ डाली और क़रीब २४ करोड़ के असबाव और नक़दी लेली। मूरत के टुकड़ों को ग़ज़नी ले जाकर मसजिद और कचहरी की सीढ़ियों में जड़वादिये॥

६—शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने सन् ११९४ ई० में बनारस में एक हज़ार मंदिर तुड़वा डाले। कासी वासियों की याचना निष्फल हुई॥

७--शमसुद्दीन अलतिमश ने सन् १२३० के लगभग उज्जैन को फ़तह कर महाकालेश्वर महादेव के १०५ गज़ लम्बे मन्दिर को तोड़ डाला। तबक़ातिनासिरी वाला लिखता है कि यह मंदिर ३०० वर्ष में बना था॥

८--अलाउद्दीन ख़िलजी ने सन् १३१० ई० में सेतबन्द रामेश्वर के पास मसजिद बनाई। यहां पर भी पण्डों की पुकार न सुनी गई॥

९--मलिक काफ़ूर ने सन् १३१३ के क़रीब दक्खन के शिवालय को, जिसकी छत में माणिक और पन्ना जड़े थे, उजाड़ डाला और महादेव की मूर्त्ति के टुकड़े २ करवा दिये। क्या वहां के पुजारियों ने याचना नहीं की थी?

१०--सिकन्दर लोदी ने बहुत से मंदिर मूर्त्ति तोड़ ताड़ कर नाश कर दिये। मथुरा में हिन्दुओं की हजामत तक बन्द करदी। क्या किसी ने जमनां मैया से पाठमई प्राथनां न की होगी?

११--औरङ्गजेब ने जब काशी में विश्वेश्वर और बिन्दुमाधव के मंदिर तोड़े मथुरामें केशवदेवका वृन्दावन में गोविंददेवका और जालन्धर के पास ज्वाला देवी का और अयोध्या आदि तीर्थ स्थानों के मंदिरों को ढाहे और उनकी जगह मसजिद बनवाई। तब क्या वहां के पण्डा पुजारियोंने पुरुषार्थ रहित केवल पाठमयी प्रार्थना=याचना ईश्वर से नहीं की थी ? हां अवश्य की थी। किन्तु ईश्वर अन्यायी नहीं है जो बिना कर्म करने वालेको कुछ सुख दुःख दे।

१२--संवत् १९१४ के वर्ष में अङ्गरेजों ने तोपों के मारे जब द्वारिका के मंदिर मूर्तियां उड़ा दी थीं तब वहां के निरुद्यमी = आलसी द्वारिकानाथ २ रटने वालों ने मन्दिर मूर्तियों के बचाव के लिये परमेश्वर पै बहुत कुछ मांगा। किन्तु परमेश्वर ने ऐसे पुरुषार्थ हीन पुरुषों को कुछ भी न दिया क्योंकि उनके कर्म इस योग्य न थे बस इस से सिद्ध होता है कि हमको ईश्वर से भी न मांगना चाहिये॥

॥ कर्मानुसार ही नाम होते हैं ॥

देखिये ! महाराज जरासंध के सामने रणक्षेत्र में से भागने के कारण रणछोर, नवनीत चुराने से माखनचोर, गोपियों छेड़ने से जार जैसे " चोर जार शिखामणि " श्री कृष्ण के नाम पड़गये॥

नोट--पौराणिक लोग उनको ऐसा मानते हैं। मेरा मत नहीं क्योंकि आर्य्य पुरुष तो कृष्णदेवजी को महा योगीश्वर समझते हैं॥

॥ अपराध कभी क्षमा नहीं होते ॥

लीजिये ! इस पर मैं अब आपको एक ऐसा सुन्दर दृष्टान्त, कि जिसको सारे शिखा धारी मानते हैं, सुनाता हूं----

देखिये ! महाराज युधिष्ठिर कैसे धर्म्मात्मा पुरुष थे या यों कहिये कि वह अधर्म्मसे कोसों दूर भागते थे परन्तु एक छोटे से अधर्म्म[झूठ बोलने] का फल उनको भी भोगना पड़ा क्योंकि ईश्वर ने अपने

अटल नियमानुसार उनके एक लघु पाप को भी क्षमा नहीं किया। जब ईश्वर न किसी को क्षमा करते हैं और न किसी को कोई वस्तु उसके कर्म बिना देते हैं तो फिर हमको भी उनके अमिट और अटल नियम के विरुद्ध कोई कार्य्य न करना चाहिये अर्थात् हमको कोई पदार्थ उन से=ईश्वर से न मांगना चाहिये परन्तु उनकी=परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करना चाहिये ॥

अब मैं नहीं समझता कि वह लोग सुख प्राप्ति के हेतु ईश्वर की आज्ञा=सुकर्म्मों का पालन करते हुए अपने कर्त्तव्यों का भरोसा क्यों नहीं करते ? मेरी समझ में तो ईश्वर से याचना करने की अपेक्षा उसकी आज्ञाओं का पालन करना बहुत ठीक है क्योंकि यह एक ईश्वरीय अचल नियम है कि जो कोई परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करेगा वह सदैव सुख भोगेगा और जो उसके आदेशों का उल्लंघन करेगा वह दुःख पावेगा। ईश्वर न्यायकारी है इसी लिये वह परमात्मा न किसी धर्म्मात्मा को दुःख और न किसी पापात्मा को सुख देता है और नहीं पापोंको क्षमा करताहै। बस इसीलिये मैं साहस पूर्वक कहता हूं कि आप कोई वस्तु **ईश्वर से भी न मांगो॥**

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है।
और ईश्वरीय व्यवस्थानुसार
फल भोगने में परतन्त्र है ॥

अहा! देखिये! क़लम बंद करते ही एक और दृष्टान्त स्मरण हो आया। वह यह है—आर्य्यों को क़तल करने वालों और उनको लूटने वालों—आर्य्यों के धर्म कर्म बिगाड़ने वालों और उनके धर्म सम्बन्धी त्यौहारों और मेलों को बन्द करने वालों--आर्य्यों की बहू बेटियों और

माल बच्चों को लौंडी और गुलाम बनाने वालों--आर्य्यों पर जिज़िया जारी करने अर्थात् धर्म सम्बन्धी कर लगाने वालों--आर्य्यों की स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करने वालों--आर्य्यों के धर्म्म शास्त्र और इतिहासादि पुस्तकालयों को जलाने वालों--आर्य्यों के तन, मन, धन, धना, धर्म, धरती, धान, धाम और धान्य आदि पदार्थों को नाश करने वालों--आर्य्यों को तलवार दिखलाकर उनके यज्ञोपवीत तोड़कर, चोटी काटकर, गोमांस खिला कर और कलमा पढ़ाकर मुसलमान बनाने वालों--आर्य्यों को नीच से नीच अत्यन्त नीच=नीचतम=हिन्दू अर्थात् काफ़िर यानी चोर, डाकू, गुलाम; काला, गंवार, बटमार, नास्तिक, बेदीन और लुटेरा आदि समझने वालों--और फिर हिन्दू=काफ़िरों को ज़र, जोरू, ज़मीन=धन, धना, धरती का लोभ देकर या शमशेर=खड्ग का भय दिखा कर म्लेच्छों=यवनों [न नीचो यवनात्परः] में गिलाने वालों--ब्राह्मणों को गोमांस खिलाने वालों--हिन्दुओं के मशहूर, मज़बूत और बेश क़ीमती मकान और मन्दिरों को तुड़वा कर अपने क़िले, क़बरें, ख़ानगाहें, गोरिस्तान, मसाजिद, मक़बरें, रोजे, महल, मकान, आदि बनवाने वालों में से एक हिन्दुओं से डाह खाने वाले, नफ़रत करने वाले, हिन्दुओं को हक़ीर, फ़क़ीर समझने वाले, हिन्दुओं के दिलदुखाने वाले, हिन्दुओं की मूरतियों और मन्दिरों को तोड़ने--फोड़ने वाले और फिर उनकी जगह मसजिद बनाने वाले; हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों को भ्रष्ट करने वाले, अपने छोटे बड़े भाई भतीजों और पोतों को मरवाने वाले, अपने बाप को कैद कर और फिर उसको पानी के लिये तरसाने=भटकाने वाले--

जब ही तो क़ैदी बाप बादशाह शाहजहां ने अपने को कैद करनेवाले कट्टर, कपटी, पाखंडी, जुलमी, ज़ालिम बेटे बादशाहको नीचे लिख हुए शेर लिख भेजे थे । इसी शाहजहां ने आगरे में मोती मसजिद और

ताजगंजका रोज़ा और दिल्लीमें जुमामसजिद और तख्त ताऊस बनवाये थे। और इसीके नामसे लोग दिल्ली को शाहाजहाबाद कहते हैं ॥ शेर ॥

आफ़रीं बाद हिन्दुआं हरबाब। की दिहन्द मुर्दः रा दायुम आब॥
ए पिसर तू अजब मुसल्मानी। ज़िंदा जां रा ब आब तरसानी॥

* संस्कृतार्थ *

धन्यास्ते किलहिन्दवः सुत! पिता यैः प्रत्यहाभ्यर्चना,
दत्ताम्भ्वञ्जालिभि निरन्तर मदः सन्तोष्यते स्वर्गतः।
कश्चित्त्वन्तु विलक्षणो यवनजो येनैष जीवन्नपि,
स्वस्तातः क्रियते तृषाविकालितः क्षुत्क्षाम कण्ठातुरः॥

अर्थात् हर तरह के उन हिन्दुओं के लिये आफ़रीं [धन्यवाद] है जो अपने मुरदों को भी बराबर पानी दिया करते हैं। ऐ बेटा! तू तो एक नए तरह का मुसलमान मालूम होता है जो एक ज़िंदा जान को पानी के बिना तरसा रहा है॥

मुसलमानी-तैमूरी सल्तनत की जड़ में तेल डालने वाले, अपने दामाद महाराजा छत्रपति शिवाजी से भय खाने वाले—

औरङ्ग यो पछिताय मन। करतो जतन अनेक।
शिवा लेयगो दुरग सब। को जाने निशि एक॥ १॥
काल करत कलि काल में। नहिं तुरकन को काल।
काल करत तुरकान को। सिव सरजा करवाल॥ २॥
सिव औरंगहि जीतिसकै। और न राजा राउ।
हथ्थि मथ्थ पर सिंह बिनु। और न घालै घाउ॥ ३॥
सिव सरजा के बैर को। यह फल आलमगीर।
छूटे तेरे गढ़ सबै। कूटे गये वजीर॥ ४॥
दूलहो शिवराज भयो दच्छनी दमामे वाले।
दिल्ली दुलहिन भई शहर सितारे की॥ ५॥

तेज तिमिरंस पर कान्ह जिमि कंस पर ।
त्यों म्लेच्छ बंस पर सेर सिव राज है ॥ ६ ॥
औरंग है शिवराज बली जिन ।
नौरंग में रंग एक न राख्यो ॥ ७ ॥

किसी पर विश्वास न करने वाले, मरहटों से डरने वाले युगल तैमूर वंशी यवन दिल्लीश्वर नाम औरंगजेब बादशाह ने भी मरते समय एक बड़ा भारी पछतावा करते हुऐ अपने लड़के कामबख्श को लिखा था—

मैंने बड़े पाप किये हैं देखा चाहिये क्या सज़ा मिलती है। मौत दिन पर दिन नज़दीक आती जाती है॥

इस उक्त वाक्यसे भी स्पष्ट विदित होता है कि औरंगजेब अपने को कर्म करने में स्वतन्त्र और अपने किये हुऐ कर्मोंके फल भोगने में परतन्त्र समझता था जबही तो उसने अपने किये हुऐ कुकर्मों पर पश्चात्ताप = अफसोस करते हुऐ ऊपर का वाक्य = फिकरह लिखाथा किन्तु ईश्वर से क्षमा = माफ़ी के लिये प्रार्थी नहीं हुआ था क्योंकि वह जानता था कि ईश्वर न्यायकारी होने से किसी के गुनाहों को माफ नहीं करता बस इससे भी साफ ज़ाहिर होता है कि ईश्वर बिना कर्मोंके किसी को कुछ नहीं देता। और जब ईश्वर किसी को कुछ नहीं देता तो हम भी अवश्य यही कहेंगे।। कि—

॥ ईश्वर से भी न मांगो ॥

* शङ्का—समाधान *

प्र०—आप औरों को तो ईश्वर से न मांगनेके लिये कहते हो। किन्तु हम आप लोगों को [आर्यों को] रात--दिन सुबह-- शाम ईश्वर से बल, बुद्धि और तेज आदि पदार्थ मांगते हुए देखते हैं। जैसे—

१····तेजोऽसि तेजोमयि धेहि=परमेश्वर तू तेज स्वरूप है, मुझ को भी तेज दे ॥ और इसी प्रकार–

२–यां मेधांदेवगणाः * ॥ इस मंत्र से बुद्धि और—

३–शन्नो देवीरभीष्टय * ॥ इस मंत्र से ईश्वरीय आनन्द आप परमेश्वर से मांगते हो। और ऐसे ही शतशः मंत्र आप के यहां वेदों में भरे पड़े हैं जिनके द्वारा आप अपनी आवश्यकताओं के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हो अर्थात् मांगते हो ॥

उ०····महाराज! आप वेद मंत्रों के अभिप्रायों को अभी तक नहीं समझे यदि आप समझते होते तो ऐसा न कहते। देखिये! उक्त मंत्रों का तात्पर्य यह है····

१—ईश्वर तेज स्वरूप है, हम को भी तेजधारी होना चाहिये ॥

२—ईश्वर बुद्धि का भण्डार है, हम को भी बुद्धिमान बनना चाहिये ॥

३—ईश्वर आनन्द स्वरूप है, हम को भी आनन्द धारण करना–चाहिये ॥ बस महाराज! इसी भांति और दूसरे मंत्रों का भी यही आशय है कि मनुष्य को ईश्वरीय गुण धारण करने की इच्छा पुरुषार्थ द्वारा करनी चाहिये न कि विना कर्म्म [पुरुषार्थ] किये केवल मुख द्वारा प्रार्थना=याचना [मांगने] मात्र से किसी पदार्थ के प्राप्ति की आस रखनी चाहिये ॥

देखिये! ब्रह्मयज्ञ [सन्ध्या] के तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं० ॥ आदि मंत्रों का अभिप्राय यह नहीं कि हम इन के पाठ करने से १०० वर्ष की आयु को प्राप्त हो जायगे, किन्तु इन का यथार्थ अर्थ यही है, कि मनुष्य १०० वर्ष पर्यन्त जीने की इच्छा को धारण करते हुए उपाय रूपी पुरूषार्थ से इस इच्छा की सिद्धि करें ॥

इस बात को भली भांति निश्चित कर लेना चाहिये, कि केवल

मांगने अथवा पाठ करने से हमें किसी पदार्थ की कभी सिद्धि हो सकती है वा नहीं। यदि केवल मांगने वा पाठ करने से वाञ्छित वस्तुका प्राप्त होना असम्भव है, तो ऐसे शाब्दिक आय व्यय, कि जिस का फल आलस्य हो सच्ची प्रार्थना = याचना [मांग] मानना अज्ञानियों का काम है। बुद्धि आदि कोई भी वस्तु मांगने अथवा पाठ करनेसे प्राप्त नहीं होती। महर्षि दयानन्द जी ने भूमिका के पृ० २१९ पं० १२-१३ पर लिखा है कि "पूर्व जन्म के पाप पुण्यों के बिना उत्तम, मध्यम और नीच शरीर तथा बुद्धि आदि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते॥

यजुर्वेद अध्याय ६ मन्त्र २२ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। इत्यादि का अर्थ महर्षि ने भूमिका के पृ० २११ पं० ११-१२ पर निम्न लिखित किया है॥

अर्थ-हे परमेश्वर! आप की कृपा से जो प्राण और जल आदि पदार्थ तथा सोमलता आदि सब ओषधी हमारे लिये सुख कारक हों॥

वैदिक प्रयोग शैली को न समझनेवाला पुरुष इस उक्त मन्त्र को किरानी, कुरानी और पुरानियों की प्रार्थना के समान वैदिक याचना समझता है, परन्तु महर्षि इस मन्त्र को वैद्यक शास्त्र (डाक्टरी) का मूल बोधक समझते हैं। इसमें ओषधियों से उपकार लेने का उपदेश है, नाकि पाठ = याचना मात्र करने से वैद्य बन जाना प्रयोजन है॥

इस से यह स्पष्ट होगया कि वैदिक प्रार्थना शब्द उच्चारण से पदार्थ प्राप्त का नाम नहीं है। और वेद मन्त्र इस प्रकार की प्रार्थना के उपदेश नहीं करते, किन्तु विद्या बोधक होने से मनुष्यों को सत्य उपदेश देरहे हैं। और कोई भी मंत्र ईश्वर से पदार्थोंको मांगने द्वारा प्राप्ति करने का उपदेश नहीं देता। यह मंत्र इस बातकी पुष्टि करता है॥

उक्थमिन्द्राय शस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषुणो रणत्सख्येषु च ॥
ऋ० अ० १ सू० १० मं० ५

अर्थात् इस संसार में जो जो शोभा युक्त रचना प्रशंसा और धन्यवाद हैं, वे सब परमेश्वरही की अनन्त शक्ति का प्रकाश करतेहैं। क्योंकि जैसे सिद्ध किये हुऐ पदार्थों में प्रशंसा युक्त रचना के अनेक गुण उन पदार्थोंके रचने वाले की ही प्रशंसा के हेतु हैं, वैसेही परमेश्वर की प्रशंसा जनाने वा प्रार्थना के लिये हैं, इस कारण जो जो पदार्थ हम ईश्वर से प्रार्थना के साथ चाहते हैं, सो सो हमारे अत्यंत पुरुषार्थ द्वारा ही प्राप्त होने योग्य है, केवल प्रार्थना = याचना = मांगने मात्र से नहीं ॥

हे महाराज ! अब आप भली भांति समझ गये होंगे कि नवीन सनातनी, मूसाई, ईसाई और मोहम्मदियों की तरह हम आर्य लोग पुरुषार्थ [कर्म] किये विना किसी एक पदार्थ की भी प्राप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना=याचना नहीं करते अर्थात् नहीं मांगते ॥ वैदिकप्रार्थना हिन्दू, क्रिश्चियन और मोहम्मांडेन्सकी तरह शब्दोंका पाठ करना नहीं सिखलाती, वरन यह (वैदिक प्रार्थना) मनुष्य को अपनी निर्वलता, दुर्गुण, छिद्र और मलीनता के जीवन को पड़ताल करने से बोधन करती हुई छिद्रों और निर्वलताकी पुरुषार्थ और कर्म द्वारा पूर्ती करना बतलाती है। यह दरशाती है कि जो आत्मा अपनी निर्बलता को अनुभव करता है, वही यत्न द्वारा इस निर्बलता को निवारण कर सकता है। यह आत्मा की कर्म करने की स्वतंत्रता और फल भोगने की परतन्त्रता को नष्ट नहीं करती। यह ईश्वर को अन्यायकारी नहीं बतलाती किन्तु पूर्ण न्यायकारी सिद्ध करती है। ईश्वर, जीव और प्रकृति के यथार्थ गुण;

कर्म, स्वभाव जानने वाला पुरुष ही एक मात्र इस (वैदिक प्रार्थना) के महत्व को अनुभव कर सकता है ॥

हे महाराज ! यदि आप वैदिक प्रयोग शैली को न जानते हुऐ हमारी=आर्य्यों की प्रार्थना को याचना=मांगना बतलाओ तो कोई चिन्ता नहीं। हम आप के कहने का कोई बुरा नहीं मानते क्योंकि—

॥ दोहा ॥

मूरख गुन समुझै नहीं तौ न गुनी में चूक ।
कहा भयौ दिन को विभौ देखौ जौ न उलूक॥

प्र०—क्या आप "प्रार्थना" शब्द के अर्थ मांगने के नहीं मानते ?

उ०—नहीं महाराज ! नहीं ! हम तो—ईश्वरीय गुण, कर्म, स्वभाव के धारण करने की प्रयत्न द्वारा इच्छा का नाम " प्रार्थना " समझते हैं ॥

इसी आशय को लेते हुए " सेनका „ ने भी, जो कि शुद्ध सात्विक भोजन का प्रिय था। इटली देश में आर्य्यभाव का प्रचारक था और ६८ वर्ष की आयु में काल के गाल में चला गया था, कहा है कि—

यदि तुम ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हो तो भद्र पुरुष बनो। वही देव पूजन करता है जो कि उन की (परमात्मा की) उच्च अवस्था का अनुकरण करता है। परमेश्वर ने सत्य और न्यायके नियम नियत कर दीये हैं। जिन पर चलने से मनुष्य सदैव सुख से रह कर आनन्द प्राप्त करते रहते हैं। यदि मनुष्य उन नियमों के विरुद्ध चाल चलते हैं तो सदा दुःख भोगते रहते हैं ॥

यहां परमेश्वर से मांगा—मूंगी का कोई काम नहीं। यहां तो उस के गुण, कर्म, स्वभाव का अनुकरण करना और उसकी आज्ञाओं का पालन करना है ॥ बस इसी लिये अब में फिर कहता हूं—

ईश्वर से भी न मांगो ॥

॥ दान त्याग के लाभ ॥

श्रीमान् पण्डित श्याम बिहारी मिश्र एम. ए डिपटीकलक्टर का कथन है। कि— कान्य कुब्ज ब्राह्मणों में मिश्रों ने मिश्र चिन्तामणि जी के समय से (जो कदाचित् संवत् १६०० के लगभग हुये होंगे) दान लेना एक दम छोड़ दिया और इसी हेतु (दान त्यागने से) इस समय वे लोग कान्यकुब्जों में प्रायः सब से अधिक व्यवसायी (उद्योगी) और धनवान हैं। हम अभिमान पूर्वक कहते हैं कि हम भी इन्हीं महानुभाव मिश्र चिन्तामणि जी के वंश में हैं॥

देखो "व्यय" नाम पुस्तक पृ० १५ पं० ११–१७ कृष्णपुरी के चतुर्वेदी ब्राह्मणों में से, जोकि एक समय सारे भूमण्डल के पूजनीयथे जिन लोगोंने दान लेना स्वीकार न किया वह लोग उत्तम=श्रेष्ठ=कुलीन कहलाने लगे। और जिन लोगों ने प्रतिगृह लेना आरम्भ कर दिया वह लोग यमुना–पुत्र, यमुना-तीर्थ-पुरोहित और चौबे-महाराज पुकारे जाने लगे ॥

सच्च है—कर्म प्रधान विश्व कर राखा ॥

इतिहास बतलाता है कि सिद्धपुर-गुजराज के प्रसिद्ध दानी राजा मूलराज के अति हठ करने पर भी औदीच्य ब्राह्मणों ने (जो अब गुजराती ब्राह्मण कहलाते हैं) विपुल धन दान लेना स्वीकृत नहीं किया था। और इसीलिये उन्होंने राजा से बड़ा भारी मान पाया था॥ "देखो ब्राह्मण को भिक्षा निषेध" नाम पुस्तक पृ० ११ पं० ११-१४

मैनपुरी के बहादुर राजा श्रीमान् तेजसिंह जी ने जोकि सन् ५७ ई० के गदरमें अंगरेजोंसे एक बड़ी बहादुरीके साथ लड़ेथे, एक दिन वहां के रहने वाले कुलीन चतुर्वेदियों से दान लेनेको कहा। दान लेने का नाम सुनतेही सब कुलीन आगबगूला बनगये और अपनी अप्रसन्नता

प्रगट करते हुए कहने लगे कि "क्या आपने हमको प्रतिग्राही समझा है ? क्या दान पात्र जाना है ? क्या भिखारी माना है ? जो आप हमसे ऐसे अपशब्द कहते हो। नहीं नहीं हम दान लेने वाले निस्तेज ब्राह्मण नहीं हैं।" इन बातों को सुनतेही राजा साहेब ने कुलीन चतुर्वेदियों का बड़ा भारी मान सन्मान किया॥

इसी प्रकार भदावरादि १८ ग्रामों के कुलीन चतुर्वेदियों ने वहांके भदौरिया राजासे दान न लेकर एक बड़ी भारी प्रतिष्ठा प्राप्ति की थी॥

जयपुर--राजपूताना में बद्रीनाथ की डूंगरी के पास एक ऐसी जाति के फ़क़ीर रहते हैं जो सवेरे से दो पहर तक आटा, दोपहर के पश्चात् २ से ६ बजे तक कौड़ियां और रात्रि समय ७ से ११ तक रोटियोंके टुकड़े मांगा करते हैं। उन में से ३-४ घरानों ने इस भिक्षा वृत्तिको छोड़कर खेती करना प्रारम्भ करदिया है। इसलिये और सब भले लोग उनकी प्रतिष्ठा करने लगे हैं॥

इसी भांति मथुरा के यमुना पुत्रों (चौबों) में से बाला जी चौबे ने भीख मांगना छोड़ कर दूकान करली है। जाटवालों (चौबों के एक घराने का नाम है) में से श्री मान् चौबे ज्वालाप्रसाद जी ने इङ्गरेजी में बी. ए. परीक्षा पास करके दीग राज्य भरतपुर में हेडमास्टरी करली है अब इन दोनों मनुष्यों की बड़ी भारी इज्जत आबरू भले लोगों के बीच होने लगी है। क्या कारण ? भिक्षा त्याग॥

मुनियाग्यवल्क्य जी महाराज कहते हैं। कि--जो दान लेने के योग्य हो और दान न लेवे उस को इतने लोक मिलते हैं जितने दान देने वाले को मिलते हैं। यथा—

प्रतिग्रह समर्थोंपि नादत्ते यः प्रतिग्रहम्।
य लोका दान शीलानां सतानाप् नोति पुष्कलान॥ १॥

याज्ञ० स्मृति अ० १ श्लोक २११

इसी प्रकार विष्णुस्मृति अध्याय ५७ श्लोक ७ में लिखा है। कि-जो पुरुष दान लेने का पात्र होने पर भी दान नहीं लेता है उस को वह लोक मिलता है जो उदार चित्त दाता को मिलता है ॥

बस इसी प्रकार धर्म्म शास्त्रों में दान न लेने की (त्यागने की) बड़ी बड़ाईयां लिखी हुई हैं जिनको स्थाना भाव के कारण मैं यहां पर नहीं लिख सक्ता ॥ परमत्मा ने चाहा तो ४ थे भागमें लिख सुनाऊंगा

॥ भिक्षुकों की मिथ्या प्रशंसा पर प्रसन्न न हो ॥

जो मनुष्य (दाता लोग). केवल नाम पाने के लिये हट्टे कट्टे भिक्षुकों को दान देकर निज प्रशंसा सुनने की अभिलाषा रखते हैं उन को महाभारत के निम्न लिखित श्लोक पर ध्यान देना चाहिये ॥

यं प्रशंसंति कितवा यं प्रशंसंति चारणाः ।
यं प्रशंसंति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥ १ ॥

अर्थ-जिसकी प्रशंसा कपटी, भाट=भिक्षुक, अथवा दुराचारिणी स्त्रियां करती हैं वह संसार में नष्ट हो जाता है ॥

॥ चौपाई ॥

जाहि सराहत हैं सब ज्वारी। जाहि सराहत चंचल नारी ॥
जाहि सराहत भाट भिखारी। मानहु सो नर जीवत मारी ॥२॥

नोट—इस उक्त श्लोक से यही स्पष्ट विदित होता है कि-झूटी सच्ची बात बनाने वाले और मिथ्या प्रशंसा करने वाले आलसी मुफतखोरों को दान या भिक्षा देकर कभी हानि=नुकसान न उठाना चाहिये ॥

॥ भिक्षुक देवतों का भी मान नहीं रखते ॥

देखिये! ये निरुद्यमी, निर्बूझ, निर्लज्ज, निर्बुद्धि, निर्दय, निस्तेज, निश्चेष्ट, निश्चिन्त, निर्बलात्मा, दुष्टात्मा, पापात्मा, दुरात्मा, दुर्लक्षणी,

असन्तोषी, मिथ्यावादी, छली, कपटी, पाखण्डी, घमण्डी, भंगड़ी, गंजड़ी, शराबी, कबाबी, अफ़ीमची, चिलमची, हुक्कई, सुलफ़ई, चरसी, हुलसी, पोस्ती, गोश्ती, ठग, चोरें, जार, बटमार, उठाईगीरे, लुटेरे, भगेरे, लड़ाकू, डाकू, झगड़ालू, क़ातिल, कुक्कड़ मुक्कड़, भुक्कड़, मुक्कड़, अक्खड़, फक्कड़, हट्टे, कट्टे, मोटे, मुस्टण्डे, सण्डे, रण्डे, गुण्डे, लुण्डे, लुचे, कुंचे, भट्ट, नट्ट, आलसीटट्टू, पूरेनिखट्टू, नकलीसाधू, सन्त, सन्यासी, सेवड़ा, जोगी, जंगम, बैरागी, गोसाईं, फ़क़ीर, फुकरा, व्यभिचारी, दुराचारी, कुविचारी, भिखारी लोग अपने माननिय देव पुरुषों का भी मान नहीं करते, या यों कहिये कि ये भिक्षुक लोग अपना मतलब गांठने के लिये अपने देवतों की बड़ी दुर्गति=दुर्दशा करते हुए औरों से उनका निरादर और मान प्रतिष्ठा भंग करवाते रहते हैं। सुनिये ! कोई राधा कृष्ण को, नचाता है, कोई सीता राम को कुदाता है, कोई महादेव पारवती को घुमाता है, कोई लक्ष्मी नारायण को दौड़ाता है, कोई कृष्णको राज-मार्ग में दिन भर बिठलाये रहता है, कोई देवी, भैरव, हनुमान, आदि देवतों का माली, काछी, कुरमी, कोली, चमार चूहड़ के सिरों पर बुला नचाता है, कोई महादेव की जलैरी, कोई राधाकृष्ण के खाने, कोई सीताराम के कपड़ों के लिये मांगते फिरतेहैं। कहां तक लिखूं। बस तात्पर्य्य यहहै कि इन भिखमंगों ने अपने महान और पूज्य पुरुषों को खूब हीं टांग पकड़ धर घसीटा है ॥

लीजिये ! अब में आप लोगों को स्वर्ण से लिखने योग्य वह अत्यन्त सुन्दर वाक्य भी लिख सुनाता हूं कि जिनको महर्षि दयानन्द जीने कहाहै

❋ महर्षि–वाक्य ❋

सब कोई जानते हैं कि वे (श्री रामचन्द्रजी, श्री कृष्णजी, श्री नारा-यण जी और श्री शिव जी आदि) बड़े महाराजाधिराज और उन की

थीं सीता तथा रुक्मिणी, लक्ष्मी और पारवती आदि महाराणियां थीं, परन्तु जब उनकी मूर्त्तियां मन्दिर आदि में रखके पुजारी लोग उनके नाम से भीख मांगते हैं अर्थात् उनको भिखारी बनाते हैं आओ महाराज महाराजा जी सेठ साहूकारो ! दर्शन कीजिये, बैठिये, चरणामृत लीजिये, कुछ भेट चढ़ाइये महाराज, सीताराम, कृष्णरुक्मिणी, वा राधाकृष्ण, लक्ष्मी नारायण और महादेव पारवती जी को तीन दिन से बाल भोग वा राज भोग अर्थात् जल पान वा खान पान भी नहीं मिला है आज इनके पास कुछ भी नहीं है सीता आदि को नथुनी आदि राणी जी वा सेठानीजी बनवा दीजिये, अन्न आदि भेजो तो रामकृष्णादि को भोग लगावें, वस्त्र सब फटगये हैं, मन्दिर के कोने सब गिरपड़े हैं, ऊपर से चूता है और दुष्ट चोर जो कुछ था उसे उठा ले गये कुछ ऊंदरों (चूहों) ने काट डाले देखिये ! एक दिन ऊंदरों ने ऐसा अनर्थ किया कि इन की आंख भी निकाल के भाग गये । अब हम चांदीकी आंख न बना सके इस लिये कौड़ी की लगादी हैं । रामलीला और रास मण्डल भी करवाते हैं, सीताराम, राधाकृष्ण नाच रहे हैं। राजा और महन्त आदि उनके सेवक आनन्द में बैठे हैं मन्दिर में सीता रामादि खड़े और पुजारी वा महन्त जी आसन अथवा गद्दी पर तकिया लगाये बैठे हैं.........नारायण को घी के बिना भोग नहीं लगता बहुत नहीं तो थोड़ासा अवश्य भेज देना इत्यादि बातें इन पर ठहराते हैं। और रास मण्डल व रामलीला के अन्त में सीताराम वा राधाकृष्ण से भीख मंगवाते हैं, जहां मेला ठेला होता है वहां छोकरे पर मुकट धर कन्हैया बना मार्गमें बैठा कर भीख मंगवाते हैं इत्यादि बातों को आप लोग विचार लीजिये कि कितने बड़े शोक की बात है भला कहो तो सीताराम आदि ऐसे दरिद्र और भिक्षुक थे ? यह उन का उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है ? इस से बड़ी अपने माननीय पुरुषों की निन्दा होती है भला जिस समय ये विद्यमान थे उस समय सीता,

रुक्मिणी, लक्ष्मी और पारवती को सड़क पर वा किसी मकान में खड़ी कर पुजारी कहते कि आओ इनका दर्शन करो और कुछ भेट पूजा धरो तो सीतारामादि इन मूर्खों के कहने से ऐसा काम कभी न करते और न करने देते जो कोई ऐसा उपहास उनका करता उसको बिना दण्ड दिये कभी छोड़ते ? देखो सत्यार्थ प्रकाश पन्ना १४७और१४८ ॥

तात्पर्य्य यह है कि ये भिक्षुक लोग अपने खाने कमाने की खातिर अपने पूज्यमान पुरुषों के मान की हानि करने से भी नहीं चूकते ॥

॥भिक्षुक—भेष॥

हे प्रिय महाशयो मैं अब आपको यह भी दिखायेदेताहूं कि भिक्षुक लोग (भीख मांगने वाले) कैसे कैसे अद्भुत = अनोखे रूप धारण कर भीख मांगते डोलते हैं ॥

सुनिये !

केतानाम उनका जो मांगनेआतेहैं फ़कीर कोई तो देवीपण्डाहै कोई बनाहै पीर
न दीननदुखीहैंबहुततोबड़ेअमीर।राजोंसे और नवाबोंसेअकसर मिलेंजागीर ॥
न धर्मकर्मरखतेहैं और न अनाथहैं।अकसरने अपनी भिखमंगाकरली जातेहै॥
बहुतोंकाभीखपेशा। अजबउनकी बातहैं।इनभिखमंगोंको एकसेदिनऔररातहैं॥
मिहनतसेऔरमशक्कतसे तोउनकोआरहै।नितभीखमांगखायेंयहीरोजगारहैं ॥
यारव इन हट्टे कट्टोंको कैसी मार है। इन भिकमंगोंसे नाकमें दम बार बारहै॥
जोगीहै कोईडोमकोईभाट बनगया।कालीका बन पुजारी किसीने भवनचुना॥
कोई कूएंके नाम उघाताहै रूपिया।बेटीका व्याह रचानेको हीला कहीं किया॥
कोई ले दुतारा कहीं राग गाये है।कोई अलख जगाके कहीं मांग खाये है॥
कोई दिखाकर शर्म कहीं आग खाये है।छूसे किसीकी भूत कहीं भाग जायेहै॥
कोई दिखाके नादिया ले छल्ला अंगूठी।हरताहै कोई माल कहीं दे जड़ी बूटी॥
तावीज़ गंडादे कोई औरत कहीं लूटी।उतारी कोई चुड़ैल कर छूछाकहीं झूंठी॥

माथेको रंगासिंदूरसेकरआंखें कालछालामांगेहैंडरदिखा कोईचिमटाबड़ासंभाल॥
सरभंगीहै कहाया गले डाल मुंड माला|धूनी रमा बिछाये कोई बैठा मृगछाल॥
गले सेली पहन डण्डे ले कोई सुथरा बना|बैठा कहीं बाज़ारमें जाके भड़ीलगा॥
दो चार बानी कहने पे पैसा अगरमिला|फूलाबहुतवगरनानहींशाम तकहिला॥
लेकरके गुर्ज़ हाथमें कोईगुर्ज़ मारहे|और टप्पे शाहकीभी कहीं होती पुकारहै॥
बनियोंको गाली देतेहैं और कारज़ार है|इन मूज़ियोंसे तंग हरएक पेशेदारहै॥
कोई किसी शहीद का जा रीव कश हुआ|देवीका देवता का पुजारी कोईबना॥
गूंगेका भगतबनके इल्म हाथमेंलिया|तीरथका पण्डाबन गयातीरथपे कोईजा॥
कम्बलको कांधेधरके कलन्दर कोईबना|सिरकी जटाबढ़ाके उदासीकोईहुआ॥
सन्यास भेषधार कहींभगवा रंगालिया|पाधाजी मीनमेख सीख कोई बनगया॥
कानोंमें मुंदरेडालके देहमें मली भभूत|सरभंगी बनके घोलकर पीतेहैं गूवमूत॥
क्षत्रीब्राह्मणवैश्यकागरचःकभीहैछूत|भंगीकी औरचमारकी अबतो नहींहैछूत॥
टाली बजाके गायेकोई शिवका प्याला|भैरवका भोपा भानताहै कोई गारहा॥
घरबार छोड़ कोईहै बैरागी बनगया|खप्परले कोई हाथमें फिरताहै मांगता॥
कोइ तो ब्रह्मचारीहै कोई बना जती|सौ सौ भर रूप फिरके गरज़औरतेंठगीं॥
इन दुष्टबुद्धियोंने रक्खीनहींकमी | गरचःबनेफ़क़ीर न दुनियांमगरतजी ॥
इनमेंसेबहुतेंलूटेहैंधमकीदिखादिखा | अक्सरनेतोकिसीकोहैबेटाकहींदिया ॥
करकीमियांगिरीकाबहानाकहींजरा | चिलमोंकीराखझाड़केसोनादियाबना ॥
मैखानेमेंशराबकाप्यालाकहींपिया | गालीगलौजकरकहींखन्दकमेंजागिरा ॥
बनपहलवानकिसीनेअखाड़ाकहींरचा|मिलगंठकटोंसेऔरोंकाधनजाकहींतका॥
लुच्चोंकी औरगुण्डोंकीचकरीकहींबना | पर स्त्रीको देखकहींछेड़जोदिया ॥
फंसकेविषयमेंवेश्यासेजाकरीचुहल|समझेयहहइसकाफ़ायदादिलजायगाबहल॥
ठगीतोइनकापेशाहैऔरझूंठपापछल|इनमूज़ियोंकोपड़तीनहींएकपलभीकल॥
निश्चययहहमकोहोताहैसच्चेविचारसे | कोईनहींबचाहै कहींइनकेवारसे ॥
यारबबचालेहमकोतो,इनकेआज़ारसे | यहमूनीतोबलाहै नहींकमहैंमारसे ॥

जोकुछकिहमनेदानसमझकरलुटादिया । विरथागयातमामथलेपापभीहुआ ॥
दुनियांकाऔरदीनकाहमनेबुराकिया । इनमूज़ियोंकोदानसमझकरजोज़रदिया ॥
थहमुफ्तखोरेदानकेमिलनेसेहैंबढ़े । मिहनतबिनाजोखानामिलासरपैहैंचढ़े ॥
तरमालरोज़उड़तेहैं औरदूधभीउड़ाते । मूच्छेंमरोड़पीतेहैं लिखेनकुछपढ़े ॥
भंगघोटपीके कोईकहींदंगहोरहा । बकताहैकोईगालियांसुलफःकादमलगा ॥
ऐंठे मरोड़े रहतेहैं खाखाडरातेहैं । सौसौतरहकागरज़हमकोडरादिखातेहैं ॥
चोरोंनेभी गरज़ इनसे भेदपायेहैं । इन्हींसे बहूबेटियां फुसलाई जातीहैं ॥
गरज़ेकि जितनेऐबहैं इन्हींमें भररहे । दुरगतहमारे देशकी यहीहैंकररहे ॥
बेखौफ़ एबकरते नहींकुछभी डररहे । येमौजैंमारतेहैं मगरहमहैं मररहैं ॥
देइनकोदान पापकोमज़बूतहमकरें । बनकरकेआपपापीनरककुण्डकोभरें ॥
देकरकेइनकोदानकोबदनामहमकरें । दोनोंबिगाड़ेलोकऔमगरपापखुदधरें ॥
अफसोसऐसेकामोंपैलाज़िमहैगरकरें । औरदानऐसेमूज़ियोंकोदैनाबन्दकरें ॥
जिसमालधनकेवास्तेदुखड़ेबहुतभरें । जोवानहींहैंउसकोजोबरबादयोंकरें ॥

॥ और भी ॥

श्री मान् गुलाबसिंह वर्म्मा लार्डगंज जबलपुर लिखित—

॥ ग़ज़ल ॥

निकम्मी क़ौम एक भारत में फैली । धनी जन जिनको नित भर देवें थैली ॥
हुआ इनका शुमार इससे भी ज्यादा । करोड़एक, लाख कई सबरोंकें गैली ॥
कोई पंडा है सदा तीर्थ वासी । रमाई खाक कोई कर तस्वी लेली ॥
है खाना मुफ्त का गाना बजाना । नचाना मन्दिरों में लेके चेली ॥
जमें हैं मठ में पै जागीरें कैसी । अजी ये देह नाशक हैगी लैली ॥
भिखारी बन गये पर देह मोटी । ये दर-दर मांगते ले ले के चैली=लकड़ी ॥
बताना इनसेकोई देशहित हुआहो । तनक भी चेतना क्या तुमने झेली ॥
अजी तुम दानियो टुक पात्र ढूंढ़ो । न देना था उन्हें देकर के जयली ॥
जो सच्चे दान भागी वो न पावें । मरें हैं अंधे लूले राह मैली ॥

यतीमों ने न पाया जब सहारा । तो उनने ना शरण ईसा की लेली ॥
गुलाब अब दान देना सुपात्रही को । भिखारी कौम इक भारत में फैली ॥

॥ भिखमंगों का ज्ञान ॥

धर्म्म शास्त्र में ज्ञान के दस लक्षण कहे हैं । यथा—

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वम् ,
क्षमा दया सर्व जन प्रियत्वम् ।
निर्लोभ दाता भय शोक हर्ता ,
ज्ञानस्य लोके दश लक्षणानि ॥ १ ॥

अर्थ····अक्रोध, वैराग्य, जितेन्द्रियता, क्षमा, दया, सब से प्रेम, निर्लोभता, दान, भय हरना और शोक मिटाना संसार में यह दश लक्षण ज्ञान के हैं ॥

परन्तु भिखारी लोग ज्ञान के इन दश लक्षणों से रहित रहते हैं अर्थात् इन दश लक्षणों पर कुछ भी ध्यान नहीं धरते वरन इनके विरुद्ध सब कार्य्य करते हैं ॥

❁ भिखमंगों का धर्म्माधर्म्म ❁

मनुजी महाराज ने धर्म्म के दश लक्षण बतलाये हैं । यथा—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ १ ॥
मनु अ० ६ । ९२ ॥

॥ अर्थ–दोहा ॥

धैर्य क्षमा और शान्ति । सद्विद्या अनुराग ।
शुद्धि बुद्धि जितेन्द्रियता । चोरी क्रोध का त्याग ॥२॥
दश लक्षण ये धर्म के । धर्मी की पहिचान ।
धर्म शास्त्र के बीच में । कहे मनू भगवान ॥ ३ ॥

परं भिखारियों में इन दश लक्षणों में से एक भी नहीं पायाजाता. परं विरुद्ध इसके—

पर द्रव्येष्व भिध्यानं मनसा निष्ट चिन्तनम् ।
वितथाभि निवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ १ ॥
पारुष्यमनृतं चैव पै शुन्यमपि सर्वशः ।
असंबद्ध प्रलापश्च वाङ्मयं स्या च्चतुर्विधम् ॥ २ ॥
अदत्ताना मुपादानं हिंसा चैव विधानतः ।
परदारोप सेवाच शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥ ३ ॥

ये १० लक्षण तौ उनमें=भिक्षुकों में अवश्य विशेष करकें पाये जाते हैं । यथा—

१—पर वस्तु छीन ने में छलादि करना ॥ उदाहरण के लिये "वामनजी का,, प्रत्यक्ष प्रमाण है । आजकल के भिखारी तौ क्षण क्षणमें छल किया करते हैं । किरानी (मुक्ती फ़ौजवाले) भी हिन्दुओंका धर्म्म छीननेको छल करनेके लिये वैरागी बनतेहै॥

२—मनसे दूसरे का बुरा चीतना ॥ बहुधा भिखारी अपनी जाति और कुटुम्ब वालोंका मरनही चाहता रहता है जिससे सबका हक्क (भाग) उसी एक को मिल जावे ॥

३—सत्यको असत्य और असत्य को सत्य जानना ॥ सत्यासत्य का निर्णय विद्या से होता है । परन्तु भिखारी के पास विद्या कहां । यदि विद्याही होती तौ भिक्षुकता का काम क्यों करता?

४—कठोर वचन बोलना ॥ कठोर वचन बोलना तौ दूर रहा, भिखारी भृगु ने तौ विष्णु को लात लगाई थी। भिखारियों के कठोर अपशब्दों को सुनकर ही भले लोग कहा करते हैं । कि-

खावें घुड़कें जाति भिखारी बन्दर की ॥ १ ॥
भिखारी की ज़बान को लगाम नहीं लगती ॥ २ ॥

इसी लिये भिखारी लोग लडुआ-पेड़ा खाते हुए और पाई-पैसा पाते हुए भी निज दाताओंको सहस्रों गालियां दिया करतेहैं।यदि कोई भले लोग गालियों का कारण पूछे तो चटसे उत्तर देदेते हैं। कि-मैया! हमारे ब्रजमें तौ सदासों ऐसीही रीत चली-आवे है। अरे! देख हमने कृष्णबल्देवकों धमकायो और उनके सखा=ग्वाल बालनकों मारभगायो, अरजुन कों धता बतायो और अच्छे अच्छे राजा महाराजन कों कठोर और कडुओ बचन कह सुनायो और भले भले नवाब और बादशाहन कों अपनो बोल बोल-बतायो अर्थात बड़े बड़े कड़े कड़े वचन सुनाये और आजकलके क्षत्री अत्री, बनिया बक्कालनकूं तौ हम कछू समझें ही नांयने, उनकों तौ रात दिन ऐंडी बेंडी सुनाऔंही करें हैं तौ भईया!तू कौन खेत को बथुआ है? अरे! हमारे ऊपर तो ब्रजलौठा की लहर की महर रहै है जासों कोऊ सुसरो हमारो बुरो नांय मानें और जो कोऊ बुरो भलो मानें तो हम वासों कहदेओ करें हैं कि भैया! तू जा हू कों बूरे की तरह घोर पी हमारो तो सुभाव ही ऐसो पर गयो है। हम का करें?

सुनें-बोलन्त हेला बचलन्त गारी। करील वृक्ष कूप जल खारी॥
नाचति नारि बजावत नर तारी। देखी कान्ह ब्रजभूमि तिहारी॥

९-झूंठ बोलना॥ भिखारी कभी सच्चही नहीं बोलता। घरमें चाहे जितना अनाज हो तौ भी यही कहता है कि "अरे दाता! आज खानेको घरमें एक चुटकी चूनकी भी नहीं है,,। जब यजमान (दाता) अपने पुरोहित को ढूंढ़ता है तौ दूसरा भिक्षुक झूंठ बोलकर कहदेता है कि "वह तौ मरगया, उसका तौ कोई बेटा--बेटी, भाई-भतीजा भी नहीं रहा, अरे! उसका तो वंश नाश होगया। अरे दाता! अरे बाबा! अरी मैया! अरी भैना! तू हमारे साथ चल, हम तुमको बहुतअच्छी तरह दरशन झांकी करायेंगे,, बस ऐसी दमपट्टी देकर भिक्षुक (पुरोहित) दाता (यजमान) को अपने काबू कर लेता है

और फिर झूंठ बोलकर कहता है अरे जिजमान ! हमें उधार बहुत देना है सो तुम दया करके चुकादो तुह्मारा बड़ा पुण्य होगा, झूंठे लेनदारों (अपने मित्रों) को बुलाकर और जिजमान के सामने खड़ा करके कहता है । महाराज ! हमें इन्हीं को ऋण देनों है । बिचारा भोला स्वर्ग का प्राप्त करनेवाला, मोक्ष का चाहनेवाला पुरोहित की प्रार्थना को सच्ची समझ ऋण चुका निज देशको लौट जाता है और झूंठे फरेबी पुरोहित जी अपने दोस्तों में बैठ अपनी झुटाई की बड़ाई करते हुए कहते हैं कि देखो ! " हमने जासुसरे जिजमान को कैसो चारों कौने चित्त मारो, देखो ! कैसे पानसौ रुपैया रोकड़ी गिनाय लिये,, बस इसी प्रकार भिक्षुक=पुरोहित रातदिन झूंठही झूंठ बोलते रहतेहैं

६—निन्दा व चुगली करना ॥ सदैव यजमानों से एक पुरोहित (भिक्षुक)दूसरे पुरोहितों[भिक्षुकों]की चुगली किया करताहै । भिक्षुक लोग दाता की भी निन्दा करने से नहीं चूकते । देखो! कहते हैं—भैया ! वा-ने भोजन तो कराये पर दक्षिणा कछू नांय दीनी, अरे ! सुसरो सूम है । वाने लडुआ करे तो मुखमेल पर खांड़ अच्छी चसकदार नांय लगाई, हाथ भींच गयो । कचौरी खस्ता तो करीं ।किन्तु घ्यो अच्छो नांय लीनो, इतनी ही कसूर कर गयो । आलू को साग बनायो तो बढ़िया पर वामें दह्यों नांय डारो,बस जाही लोभ में फंस गयो। अरेभैया ! जे लोग जिमामें तो हैं पर सुसरे सरधा सों नांय जिमामें अपनी नामवरी कों पचें हैं ताही सों तो इन बिड़चोदनकी ज्योंनारमें कछू मजा नांय आवे है बस इसी प्रकार यह लोग अपने दाताओं की भी सदा निन्दा कीया करते हैं ॥

७—विरुद्ध वा आगा पीछा न सोचकर बोलना या बकना ॥ भिखारी सोच विचार कर कभी नहीं बोलता । जो मन में आता सोई बकता रहता है । क्यों ? क्यों कि उस को सोचने के लिये " दाता दे—दाता दे " कहने से छुट्टी ही नहीं मिलती ॥

८—चोरी करना ॥ भिखारी (तीर्थ पुरोहित) चोरी करने में बड़े चतुर होते हैं। यह लोग आपस में एक दूसरे के यजमानों को चुराया करते हैं। कभी २ कोई २ तीर्थ पुरोहित अपने यजमानों के माल-पात को भी चुरा लेते हैं। बहुधा भिखारी मांगते मांगते सूने घरोंमें से चोरी कर लाया करते हैं इसीलिये किसी कवि ने कहा है—

* चौपाई *

सूने घर में मांगन जांय । जो पावें सो लेंय चुराय ॥

९—जीवों की हत्या कारण और निष्कारण करना ॥ बहुधा भिखारी लोग यजमानों के पीछे आपस में लड़ भिड़ कर एक दूसरे को मार डालते हैं। कभी २ गहने के कारण बालकों को भी मार फेंकते हैं। अच्छे २ तीर्थों पर के अच्छे २ भिखारी (पुरोहित) अपनी सन्तानों को मृत्यु से बचाने के लिये झूठे विश्वास पर ग़रीब अनबोल बकरे, मुरगे, कौए, कबूतर और बेंटाओं (शूकर के बच्चों) का गला घुटवा देते हैं और कोई २ छुरा फिरवा देते हैं। और कोई २ पुरोहित यजमानों से गोदान ले कर गौ को गोवधिक के हाथ बेच देते हैं ॥

१०—पर स्त्री या वेश्या गमन करना ॥ भिखारी=तीर्थपुरोहित वेश्या और पर स्त्री गमन करने से भी नहीं चूकते कोई२ तो अपनी चेली या दासी कहकर साथही साथ लिये डोलते हैं ॥ क्या आपने कभी काशी, प्रयाग और गया आदि तीर्थ पुरोहितों के चरित्रोंको नहीं देखा-सुना ?

॥ भिखमङ्गों की दशा ॥

याचक दर्पण सम सदा । करि देखो हिय दौर ।
सन्मुख की गति आर है । विमुख भये कछु और ॥ १ ॥
याचक सुघर समाज में । आय बिगारै रङ्ग ।
जैसे हौज़ गुलाब को । बिगरै स्वान प्रसङ्ग ॥ २ ॥
याचक जनकी प्रीति को । गये अलप बुध गाय ।

ज्यों घन छाया गगन की । छन में जाय नसाय ॥ ३ ॥
सादर पालियस्वान भिखु । भारि सुख मोहन भोग ।
तउ दौरे तजि टूक लगि । जहं दुदुकारत लोग ॥ ४ ॥

* सोरठा *

भिक्षुक तुल्य विरदङ्क । पिण्ड तुण्ड में जब पड़े ।
तब लग बोलत चङ्क । नातर निन्द कुरसकरै ॥ ५ ॥

॥ भिखमङ्गों का असली काम ॥

प्र०—अरे भाई! और तौ हमने तेरी बातें सुनलीं, जान पड़ा कि वह सब सच्ची हैं। पर यह तो बतादे कि भिखारियों का असली काम क्या है?

॥ चुटकला ॥

उ०—यदि कोई भीख न दे तौ उसकी बुराई करना।
यदि कोई आटे की चुटकी दे तो उसकी भलाई करना ॥ १ ॥

॥ सोरठा ॥

दान लेत हरषात । करि विनती बहु भांतिसों ।
जो न मिलन बिलखात । शत्रु समझ गाली बकत ॥ २ ॥

बी० एन० शर्म्मा

॥ नरेन्द्र—छन्द ॥

दै जजमान दान मन नो यदि तुम कहं न रिझावै ।
आशिर्वचन सुफल के बदले लाखन गारा पावै ॥ १ ॥

दीन—कवि ॥

* अन्तिम—प्रार्थना *

॥ ग़ज़ल ॥ १ ॥

चाहै हमारे प्यार में बेशी न कीजिये ।
देते हो जो इनाम सो वह भी न दीजिये ।

खाना हो खूब खाइये पीना हो पीजिये ।
दीनों के हाले ज़ार पै भी मत पसीजिये ।
सब कीजिये पै भिक्षा अरु दान न लीजिये ॥ १ ॥
नागिनें सियाह से भी ज़ुबां पर डसाइये ।
बिच्छू हज़ार हाथ से अपने कटाइये ।
हर इक क़दम पै राह में गुखरू बिछाइये ।
पर एक अर्ज़ मेरी यही मान जाइये ।
सब कीजिये पै भिक्षा अरु दान न लीजिये ॥ २ ॥
पत्थर गले में बांध नदी में डुबाइये ।
ऊंचे पहाड़ से चहे नीचे गिराइये ।
चाहे जो जी तो ज़हर हलाहल पिलाइये ।
पर एक बात मेरी यही मान जाइये ।
सब कीजिये पै भिक्षा अरु दान न लीजिये ॥ ३ ॥
होरी, में भाड़, भट्टी में चाहे जलाइये ।
खूंख्वार शेर सिंह की चुल में डगाइये ।
हीरा कनी भी शौक से मुझ को चटाइये ।
पर बात एक छोटी सी यह मान जाइये ।
सब कीजिये पै भिक्षा अरु दान न लीजिये ॥ ४ ॥
जो कुछ नसीब में हो सो सब सह भी जाइये ।
मुंह से न बोलने की भी सौगंद खाइये ।
चाहे सभा में आइये चाहे न आइये ।
यह एक बात दिल से कभी मत भुलाइये ।
सब कीजिये पै भिक्षा अरु दान न लीजिये ॥ ५ ॥

॥ चौपाई ॥ दीन—कवि

सब से विनय करौं कर जोरी । मानहु सत्य वचन यह मोरी ॥

बंधु प्रतीत त्याग पर लाओ । जिहिते मान बड़ाई पाओ ॥ २ ॥
राम — कवि

॥ विशेष—विनय ॥

इतना ही बस कहना काफी—ज्यादा बकने से क्या काम ।
उठो परिश्रम करना सीखो—भिक्षा का अब छोड़ो काम ॥ १ ॥

* निवेदन *

हे महाराज ! लीजिये ! मैंने आपके उपदेशानुकूल और अपने प्रणानुसार "दान और भिक्षाग्रहण" निषेधपर यह एक छोटीसी पुस्तक लिखदी । अब आपसे विशेष और क्या कहूं ? क्योंकि —

बहुत बुझाय तुमें का कहहूं ।
परम चतुर मैं जानत अहहूं ॥ १ ॥

और भी

हम सों तुम अति चतुर—कहा तुम कों कहिके समझावें ।
भला चमत्कृत तेज पुञ्ज—सूरज को दीप दिखावें ॥ २ ॥

अरे भिक्षा ! तू

॥ मुझे तो कभी अपना मुख भी न दिखाना ॥

अरे मनुष्य मात्र के बल, वीर्य, साहस, उत्साह को तोड़नेवाली; ध्यान, धारणा, योग, समाधि को भंग करने वाली; प्रतिष्ठा, मान, मर्य्यादा को मिटानेवाली; तन, धन, धर्म को क्षीण करनेवाली; मनमुखको मलीन रखनेवाली; मनुष्य को अपयश, अपमान, अपकीर्त्ति दिलानेवाली; छली कपटी, कायर, कापुरुष, कुकरमी, दुराचारी, व्यभिचारी, कुविचारी बनानेवाली; कुचाली चाल चलानेवाली; भारत को गारत करनेवाली; धर्म्म नाशनी, चाण्डालनी, पापिनी, राक्षसनी, निल्लज, अधमाधम भिक्षे ! तू मुझे तो कभी अपना मुख भी न दिखाना ॥

हे सन्तोष !

आइये ! आइये !! हृदय में विराजिये !!!

हे हमारे शरीर, बल, तेज, आयु, आरोग्यता, बुद्धि, मान, सन्मान आदर, सत्कार, प्रतिष्ठा, धन, धर्म्म, कर्म्म, कुटुम्ब को बढ़ानेवाले। हमको आनन्द देनेवाले। हमारे दुःखों को दूर करनेवाले। हमको सदैव सुख में रखनेवाले। बड़े बड़े धनपतियों की प्रज्वालित अग्निरूपी बढ़ती हुई तृष्णाको बुझाने=मिटाने वाले-

दोहा--गो धन गज धन बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

प्रत्येक पुरुष के भभकते हुए अन्तःकरण को शीतल करनेवाले सन्तोष! आइये! आइये!! और हमें प्रसन्न रहने के हेतु सदैव के लिये हमारे हृदय में विराजिये!!! ॥ दोहा ॥

हे सन्तोष सुसम्पदा। हमें करो धनवान।
यद्यपि जगमें बहुत धन। नहिं कोउ तोहि समान॥

॥ अन्तिम—प्रश्नोत्तर ॥

प्र०—इस लेख=पुस्तक को इतना छोटा क्यों लिखा ?

उ०— ॥ सोरठा ॥

पढ़त थके नहिं कोय—इमि कारण लिख लेख लघु।
पाठक अर्पण सोय—आशय लेहु विचार मित॥

हे प्रिय मित्रवरो! यदि आप अपना कल्याण चाहतेहो तो मेरी-

॥ अन्तिम—विनती ॥

दोहा--करत सबन सों बीनती — कहि सच्चे शुभ बैन।
दामोदर प्रसाद के—पढ़ो बचन दिन रैन॥

पर सावधान हो ध्यान दीजिये ! क्योंकि—

॥ चौपाई—जो यह कथा सुनें धर ध्याना।
ताके प्राण होंय कल्याना ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

* ओ३म्-खम्ब्रह्म *

* अथ द्वितीयोऽध्यायः *

तीर्थवासी दान के लिवैया और भीख के मंगैयाओं (के) ॥ वर्त्तमान धर्म्म और कर्म्म के विषय में ॥

ईश्वर-वन्दना

अयि ! घट घट के अन्तर्यामी । सबके दाता सबके स्वामी ॥
जल और थलमें तूही तू है । फूल और फलमें तूही तू है ॥
तेज तेरा हर कहीं प्रगट है । चमकारा तेरा घट घट है ॥
सर्व व्यापी हमने यह माना । उसको मिला पर जिसने जाना ॥
दिल से धोवै जो तेरा मेरा । तो फिर क्या घर दूर है तेरा ॥

प्रश्न—अरे भाई ! अब तक तू ने दान अरु भिक्षा ग्रहण निषेध पर जो कुछ वाक्य सुनाये सो सब सत्य हैं । उनके सुनने से भली भांति निश्चय हो गया कि सामर्थी (धनी या बली) को कभी किसी प्रकार से भी दान—लेना और भीख—मांगना ठीक नहीं । परन्तु अब तीर्थ वासी दान के लिवैया और भीख के मंगैयाओं के वर्त्तमान समय के धर्म—कर्म्म का कुछ वर्णन और लिख—सुनादे ॥

उ०—महाराज ! वहुत अच्छा, आपकी इच्छा, सुनाऊंगा । मेरे मन में तो इस समय विश्राम लेने की थी । किन्तु अब आप की आज्ञा को भी नहीं टाल सक्ता । लीजिये ! सुनाता हूं । अच्छा अब आप ध्यान धर श्रवण करिये !

॥ श्री बाबू भगवान दीन जी ॥

स्वर्णपदक प्राप्त सुप्रसिद्ध कवि श्री मान्यवर बाबू भगवान दीन जी " दीन " सम्पादक लक्ष्मी मासिक पत्रिका गया (बिहार) तथा सभापति काव्यलता सभा छत्रपुर—बुन्देलखण्ड कहते हैं—

॥ दोहा ॥

तीरथ वासी विप्रगण, दीन विनय सुनि लेहु ।
निज कुल मर्य्यादा रहै, ताही में मन देहु ॥ १ ॥

मधुर मुदित कारी वचन, जग दुर्लभ द्विजराज ।
समुझि न दीजो दोष मोहि, परखौ अपने काज ॥ २ ॥

❀ भुजंग प्रयात छन्द ❀

(१)

अयोध्या गया प्राग काशी निवासी, हरिद्वार द्वारावती गंग वासी ।
पुरीबद्रिकाधाम रामेश्वरीया , कुरूखेत जागेश्वरी माथुरीया ॥

(२)

अरे चित्रकोटी व विन्ध्या निवासी, कलिन्दी व गोदावरीतीरवासी ।
सुनों सर्व पंडा जनौ बात मेरी, गुनौ चित्त धारौ लगाऔ न देरी ॥

(३)

बनाया तुम्हें ईश ने तीर्थवासी, गुणाली तुम्हारी चहूंधा प्रकाशी ।
बड़े भूमि पालौ तुम्हें मानते हैं, तुम्हैं दान दैना भला जानते हैं ॥

(४)

घरे बैठि लाखों रुपैया कमाते, तिहूं पै सदाही दरिद्री दिखाते।
ज़रा चित्तमेंकीजिये तोविचारा, कि कैसे रहे, हाल क्याहै तुम्हारा॥

(५)

बने विप्र औ पुण्य भू में बसेहौ, तबौ दाग के जाल में यों फंसे हौ।
न विद्या पढ़ो ना जपो ईश नामा, सदा भंग बर्फी से राखौ हौ कामा॥

(६)

सबै भंग के रंग में यों पगे हौ, अनाचार में कामके ज्यों सगे हौ।
सदा नीचकामोंके सामान साजौ, नमस्कार है आपको विप्र राजौ॥

(७)

सुरा चर्स गांजा अफीमौ उड़ाओ, गरे बारनारी ख़ुशीसे लगावो।
न संकल्प लौं शुद्ध मूं से उचारौ, तबौ पूज्यहोने की शेखी बघारौ॥

(८)

न सन्धा करो ना जपौ गायत्रीको, करौ पाठपूजा नमानौ किसीको।
भले एक पैसा से नाता लगावो, न दे दान ताको अनैसी सुनावो॥

॥ दोहा ॥

आगे चलि जजमानन कहं, कछुक दूरि ते लेहु।
बहुत भांति मनुहारि करि, निज गृह आसन देहु॥ १॥

॥ नरेन्द्र छन्द ॥

दै अवास सुख साज सबै पुनि निज करलाय जुटावौ।
दीपक बारि तासु ढिग धरि पुनि खटिया लाय बिछावौ॥
भोजन सामिग्री बज़ार ते दौरि लाय पुनि देहू।
चौका साफ कराय, पात्र सब ताके ढिंग धरि देहू॥

२

लै नवीन घट सुभग स्वच्छ जल धाय कूप तें लावो।

कंडा चिलिम तमाखू लकड़ी पुनि पुनि पूंछि मंगावो ॥
कबहूं कबहूं निज हाथन ते भोजन देहु बनाई ।
पान लगाय खवाय ताहि पुनि चिलमहिं देहु चढ़ाई ॥

(३)

शय्या देहु बिछाय कबहु कहुं धोती लेहु निचोरी ।
झूंठी कहत न बात दीनें यह लखी आंख की मोरी ॥
झाड़े जंगल हित जंगल कौं जजमानहिं लै जावौ ।
जल दै थान बताय दौरि पुनि टोरि दतून करावौ ॥

(४)

वर्ण भेद कौ ज्ञान त्यागि कैं सेवौ सबहि अमानी ।
पूज्य बानि तजि बनि बनि पूजक सुफल करहु जजमानी ॥
कबहूं समय पायकैं तुमहीं मूसि लेहु जजमानै ।
कबहूं जजमानिन की इज्जत हरहु सहित अभिमानै ॥

(५)

है जजमान दान मनमानो यादि तुम कहं न रिझावै ।
आशिर्वचन सुफल के बदले लाखन गारीं पावै ॥
हे महाराज तीर्थ पण्डा गण विप्र कुलीन वरिष्ठा ।
तुम्हरे हीन कर्म कौ दीन्हौ 'दीन' सुकवि यह चिट्ठा ॥

(६)

देखौ करि विचार मन अपने सोचि निकारौ भूला ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह है इन कर्मन कौ मूला ॥
येही कर्म करन के काजे ईश तुम्हैं उपजायौ? ।
ब्रह्म जन्म अरु तीर्थ वास दै जग महं पूज्य करायौ? ॥

(७)

मानुष होय विप्र घर जन्मे तीर्थ वास पुनि पावो ।

बिनु श्रम सारे भोग्य पदारथ निज घर बैठि उड़ावो ॥
इतनी कृपा ईश की तुम पै ताहू पै ये कर्म्मा ।
आप समान दुनी में दीखत नाहिं दूजो बे शर्म्मा ॥

॥ दोहा ॥

माघ त्यागिये विप्र वर, साघ सहित सुनि बैन ।
लाख लाख के, दाख सम, इन से दूजे हैं न ॥ १ ॥
निन्दा ईर्षा द्वेष ते, कही बात नहिं एक ।
निज नैनन देखी कही, तुम हीं करो बिवेक ॥ २ ॥

॥ नरेन्द्र छन्द ॥

काछी, कुरमी, लोधी, नाऊ, तीर्थ करन जे आवैं ।
माता, पिता, अन्नदाता, की तुम मुख पदवी पावैं ॥
कोरी, भाट, कलार, कहारहु, शूद्र कुपथ अनुगामी ।
पदवी लहैं तुम्हारे मुख ते "महाराज,, अरु "स्वामी,,॥

(२)

कोऊ राजा तीर्थ करन हित जब कबहूं चलि आवै ।
तुम्हरौ आपुस कौ झगरौ लखि मनमें अति घबरावै ॥
तासों दान लेन के कारण तुम सब झगरौ ठानौ ।
गारी लात लट्ठ अरु जूता देत लेत सुख मानौ ॥

(३)

दान लेन के औसर द्विजवर बनौं महा कंगाला ।
लेकर दान रांड़ वेश्यन कहं कैलै देत दुशाला ॥
अथवा मादक वस्तु सेय कैं सो धन वृथा गंवावो ।
करि कुकर्म निन्दापवाद लै निज कुल कानि घटावो ॥

(४)

जजमनान की लादि गठरियां तीरथ तीरथ फेरौ ।

कबहूं लै लरिकन कहं कानियां लार मूत्र नहिं हेरौ ॥
"हांजू,, "महाराज,, "धनदाता,, "मातपिता,,अरु"स्वामी,,।
ऐसे वचन दीन ह्वै बोलौ करि अति नीच गुलामी ॥

(५)

जो धनवान देय भंडारा बिन बोले तहं जावो ।
सेरक अन्न टका पैसा हित अतिही कलह मचावो ॥
धर्मवान दानिन कहं तुम सब मिलि कै इतो दबावो ।
मन ना करैं तीर्थ जैवे कहं कहो लाभ का पावो ॥

(६)

हे तीरथवासी पंडा गण ! निज मन करो विचारा ।
ऐसे कर्म्म करन हित तुम्हरो भो जग में अवतारा ? ॥
ऐसे ऐसे नीच कर्म करि निज कुल मान मिटावो ।
पुण्य भूमि तीरथ धामन कां निन्दा वृथा करावो ॥

(७)

तप संतोष विप्र को भूषण सो न रतीक तुम्हारे ।
अहंकार पद पूज्य होन कौ वृथा रहौ हिय धारे ॥
ताते विनय " दीन , की सुनिये करिये चारु विचारू ।
निज वंशाभिमान राखन हित सीखौ शुभ आचारू ॥

(८)

विद्या पढ़ो करौ नित सन्ध्या करि गायत्री जापा ।
क्षमा शील संतोष धारि हिय काटौ निज तन पापा ॥
बिना बुलाये दान लेन हित काहू ढिग जनि जावो ।
जजमानन ते तीरथ यात्रा सहित विधान करावो ॥

॥ दोहा ॥

श्रद्धा युत जन देय जो, सहित तोष सो लेहु ।
निज आचार सुधारि कैं, कुलहिं सु गौरव देहु ॥
दामोदर परसाद को, आयसु निज शिरलीन ।
तीरथ पंडन की कथा, सुकवि "दीन" कहि दीन ॥

॥ श्री ठाकुर बलदेवसिंह जी ॥

प्रसिद्ध कवि (मशहूर शायर) श्री मन्नूवर ठाकुर बलदेवसिंह जो वर्म्मा चौहान निवासी ग्राम मकरन्दपुर ज़िला मैनपुरी कहते हैं—

॥ दोहा ॥

मुखिया मुखसो चाहिये, खानपान को एक ।
पाले पोषे सकल अङ्ग, तुलसी सहित विवेक ॥ १ ॥

॥ सवैया ॥

(१)

भोजन स्वाद करै मुखही अरु पेट में जायके भूक बुझावे ।
पाचन शक्ति पचावत है क्रमसों वह साधु धातु बनावे ॥
नश नाड़ी के द्वारा मथै तनमें उपयुक्त यथा रसरक्त पठावे ।
त्यों बलदेव समाज के मध्य बने मुख सो मुखियासो कहावे ॥

(२)

जो कछु कर्म करै मुखिया कर्त्तव्य समाज वही ठहरावे ।
उन्नति अवनति नेकी बदी मुखियाही करै औ समाजपै आवे ॥
ज्यों बलदेव संग्राम के बीच सिपाही लड़ै अरु प्राण गंमावे ।
हार औ जीत में मीत सदा सर्दार ही कीरति नाम कमावे ॥

[३]

आर्य्य भूमि जहाज़ के बीच चढ़े हते चारहु वर्ण विचारे।
ब्राह्मण ज्ञान की बल्ली गहें ये मल्लाह औ खेवनहार हमारे॥
वैदिक ज्ञान के बल से दुःख सागर से बहु पार उतारे।
सो अब मांगत भीखहीं फिर बलदेव ये विप्र भये मतवारे॥

(४)

अपनो कर्त्तव्य विसारि दियो फिरेंमांगत भीख ये आलसकारे।
हीन भये पुरुषारथ तजि वेद पुराणिक जाल पसारे॥
आपस में मत भेद भयो और वैर विरोध बढ़े यहां भारे।
दान के लालची विप्र भये बलदेव ये देश डुबावन हारे॥

(५)

वर्णाश्रम की मर्याद तजी मत वैदिक कर्म धर्म विसारे।
बाल्य विवाहप्रचार कियोबिन मौत हज़ारन बालक मारे॥
विधवा भई बालीसी वैसमें लाखन रोवत हैं वह मांझ मकारे।
दान के लालची विप्र भये बलदेव ये देश डुबावन हारे॥

(६)

सब भांति सुयोग विचारि जितेंद्रियो वैदिकज्ञान ऋषीनको धरे।
अग्नि औ वायु औ अंगिरा आदिन चारहु वेद इन्हींपै उतारे॥
आज भई विपरीति दशा सतवादिन के उपजे है लवारे।
लालचमें लवलीन भये बलदेव ये विप्र डुबावन हारे

[७]

सतमारग वेद निसारिदियो मनमाने पुराण बनायप्रचारे।
ईश्वर के अवतार बताय के दम्भ पखण्ड रचे बहु भारे।
धातु पषाण की मूर्ति बनाय के ठाकुर मन्दिर मांहि पधारे।
दान के लालची विप्र भये बलदेव अनर्थ करावन हारे॥

(८)

सन्ध्या गायत्री न जाने कछू अरु मस्तक मांहि लगाँव सफेदी।
भंग के रंग में दंग भई बुधि लोग कहैं तिन्हें ब्रह्मके भेदी ॥
दानके लोभमें लाज गई कुल कीरति याही की भेटमें देदी ।
अक्षर एकहू जाने नहीं बलदेव बने मुख आप त्रिवेदी ॥

* कवित्त *

विद्या को न लेश तप ज्ञान औ न ध्यान करें जाति अभिमान मानो ब्रह्मा सुत येही हैं । मद्य पीवें मांस खावें मीन को चवाय जावें दया को न जाने क्रोध हिन्सा से भरेही हैं ॥ फरें बलदेव अबलान पै अनर्थ बहु व्याह करें वृद्ध गुण कर्म बिगेर ही हैं । सन्ध्या अग्नि होत्र को जाने कौन वस्तु होत पूछे कोई आप तो बतावें वाजपेयी हैं ॥

* ग़ज़ल *

१—अब तो शर्मायें ज़रा मुफ्त के खाने वाले ।
दान लेले के खोटे कर्म कमाने वाले ॥
विद्या पढ़ते नहीं उद्यम कोई करते भी नहीं ।
यही हैं देश को कङ्गाल बनाने वाले ॥ १ ॥
स्वर्ग औ मुक्ति के साधन हैं बताते झूठे ।
पांच पैसे में गौ कुश की पुजाने वाले ॥ २ ॥
कितनी हत्यायें करें इन को जिमावे कोई ।
उसे बतलायेंगे यही स्वर्ग में जाने वाले ॥ ३ ॥
कन्या जो बेचे तौ उसमे ये दलाली लेते ।
यही हैं देवता दुष्कर्म कराने वाले ॥ ४ ॥
साठ का वर है तो कन्याहै कुल वर्ष दश की ।
यही हैं जोट इन दोनों के मिलाने वाले ॥ ५ ॥

ख़ौफ़ ईश्वर का नहीं करते ज़रा भी दिलमें ।
टके की चाह में कुल धर्म गंवाने वाले ॥ ६ ॥

ब्याह बचपन में कराते हैं टके की ख़ातिर ।
बाल विधवाओं की तादाद बढ़ाने वाले ॥ ७ ॥
बढ़ा विभचार हमल होते हज़ारों इस्क़ात ।
यही हैं सारे अनर्थों के कराने वाले ॥ ८ ॥

बाज़ आते नहीं अब तक ये सितमगारी से ।
क़ौम की आबरू मिट्टी में मिलाने वाले ॥ ९ ॥

तूल देना नहीं अब इसको चाहता "बलदेव" ।
जान लेंगे सुजन बिगरी के बनाने वाले ॥१० ॥

२— ज़माना बीत गया होश में आओ अब तो । मुफ्त खोरी से ज़रा दिलको हटाओ अब तो ॥ दान लेना ही रोज़गार बनाया तुमने । तेज तप खो गया बातें न बनाओ अब तो ॥ मुफ्त खोरी ही ने दुर्दिन ये दिखाया तुमको । दीन हो दान्तदर बदर न दिखाओ अबतो ॥ खुलगई पोल पुराणों की ये गप्पें छोड़ो । पढ़ो वेदों को सच्चे विप्र कहाओ अबतो ॥ दशम स्कन्ध भागवत की कहानी पढ़ के । कृष्ण को चोर विभचारी न बताओ अबतो ॥ देखकर हंसते ईसाई औ मुसलमां तुमको । सिया राधा को न महफ़िल में नचाओ अब तो ॥ चीर हरने की बे हयाई की बातें छोड़ो । पतिव्रत धर्म का उपदेश सुनाओ अब तो ॥ हाय ख़ुद गरज़ी बुरा हो तेरा सत्या नाशिन । दयामय देश को दुर्गति से बचाओ अबतो ॥ मुफ्त ख़ोरी से हटें विप्र ये विद्या सीखें । दान लेने से घृणा इनको दिलाओ अब तो ॥ वेदविद्याका हो भारतमें आवजा परचार । तुम्हीं सत सीख दे हमें शान्ति दिलाओ अब तो ॥ यही बलदेव की अर्ज़ी है दयामय तुम से । सच्चे उपदेश भारत में पठाओ अब तो ॥

लावनी: चौक—१—तुम ले ले दान कुदान ऋषी सन्तानो । हो गये पतित चाहे मानो या मत मानो ॥ टेक ॥ छः कर्म विप्र के मनु महाराज बखाना । वेदों को आप पढ़ना औरोंको पढ़ाना ॥ यज्ञों को करना औरों को भी कराना । दीनों को दान देना जो और से पाना॥ गये सभी भूलि रहा याद मांगनो खानो । होगये पतित चाहे मानो या मत मानो ॥

चौक २—थे तुम्हारे पुरुषा सत उपदेशक प्यारे । तिनके तुम उपजे गप्प हांकने हारे ॥ तुम स्वारथ रत हुइ सिगरे काज बिगारे । फिरो दान की खातिर दर दर दान्त निकारे ॥ अब हूं होश करि अपनो धर्म पहिचानो । हो गये पतित चाहे मानो या मत मानो ॥

चौक ३—तुम टके की खातिर झूठी साख भरते हो । सच कहते हुए यजमानों से डरते हो ॥ तजि धर्म कर्म दक्षिणा की आश करते हो । दोऊ नैन मून्द दोजख में कूद पड़ते हो ॥ दुर्लभ शरीर तुम पाप पङ्क में सानो । होगये पतित चाहे मानो या मत मानो ॥

चौक ४—तुम टके की खातिर बाल्य ब्याह करवाते । कोमल कन्या बुड्ढों के गले बंधवाते ॥ कन्या बिकवाते आप दलाली खाते । ईश्वर का खौफ़ नहीं ज़राभी दिलमें लाते ॥ तुम लियो बांधि जबसे ये ठगीको बानो । होगये पतित चाहे मानो या मत मानो ॥

चौक ५—तुम्हें मिला मुफ्तका माल खानको जबसे । दिया वेद शास्त्र का पढ़ना छोड़ तुम तबसे ॥ दियेत्याग विप्रके कर्म मूर्ख हुए जबसे । रहाकाम न तुमको हवन यज्ञ जप तपसे ॥ बहिका २ कर भारत माल बिगानो । हो गये पतित चाहे मानो या मत मानो ॥

चौक ६—तुम टकेकी खातिर पत्थर तक पुजवाये । टट्टी की ओट में नाना कुकर्म कमाये ॥ तुम सत पुरुषों के स्वांग बनाय दिखाये । सोलह सहस्र गोपिन संग कृष्ण नचाये ॥ तुम्हें स्वारथ वस कछु हित अनहित न सुझानो । हो गये पतित चाहे मानो या मत मानो ॥

चौक ७—हुआ सच्चा विप्र कलियुग में एक विश्वासी । जिसने हम सब की नीन्द अविद्या नासी ॥ महिमा वेदों की सबपर पुनः प्रकाशी। शुभ नाम था जिसका **दयानन्द** सन्यासी ॥ बलदेव सकल मिलि उस्का सुयश बखानो । मत बनो पतित अब अपनो धर्म पहिचानो ॥

॥ छन्दगीतिका—१ ॥

बहुत सोये नीन्द में भयो प्रातः अब तो जागिये । ग़फ़लत में गौरव खो दिया अब तो सत पथ लागिये ॥ ब्राह्मणो ! तुमही थे मुखिया आर्य्यों के गोल में । शोक पशुवत् बन गये घुसकर पुराणिक पोल में ॥ हाय स्वारथ ने तुम्हें असमर्थ ऐसा बना दिया । धर्म युत पुरुषार्थ का तुम नाम तक भी भुलादिया ॥ वर्ण आश्रम की व्यवस्था तोड़ कर मूरख बने । छोड़ि विद्या वेद की दिन व दिन पावत दुःख घने ॥ ब्रह्मचर्य्य विहीन बुधिबल क्षीण भारत सुत भये । सुख नहीं स्वपने में दुःख बढ़ने लगे यहां नित नये ॥ निपट निर्बल हो गये भारत निवासी आज कल । अबतो किरपा कीजिये तजि झूंठ स्वारथ और छल ॥ वेद मारग पै कदम धरना तुम्हारा धर्म है । ब्रह्म तेज बढ़ाइये गर नाम की कुछ शर्म है ॥ होम यज्ञादिक कर्म अब करिये और कराइये । शुद्ध हो जल वायु भारत पुनः स्वर्ग बनाइये ॥ रोग शोक अकाल अरु दुर्भिक्ष भारत से भगें । सिद्धि हों सब काज़ तब जो आप ग़फ़लत से जगें ॥ है यही बलदेव की इतनी विनय ओंकार से । पाक हों भारत के ब्राह्मन दानके आज़ार से ॥ हे दया के सिन्धु इन को बुद्धि ऐसी दीजिये । छोड़ दें दक्षिणा की आदत शरण में अब लीजिये ॥

॥भंजन ध्वनि॥ * दादरा *

तुम्हें दक्षिणा ने पतित करि डारो ॥ जागो ऋषी सन्तान नींद से गुण गौरव अब खो दियो सारो ॥ जब से भये तुम दान के लोभी रह्यो न आदर मान तुम्हारो ॥ जप तप नियम धर्म छूटे ब्रह्म तेज भयो क्षीण

तुम्हारो ॥ वर्णाश्रम मर्य्याद भ्रष्ट भई विद्या विहीन देश भयो सारो ॥ ठकुर सुहाती कहन तुम लागे सत्याऽसत्य विवेक बिसारो ॥ होन लगे अनरथ भारत में जब से पुराणिक जाल पसारो ॥ नाना कुरीति रीति प्रचरित भई दिन दिन भारत होत दुःखारो ॥ आंखि खोलि अब देखो जगत में काहू को हालन जैसो तुम्हारो ॥ पुरुषारथ से करत सब उन्नति यूरुप अरु जापान निहारो ॥ तजो मुफ्त खोरी की बानि अब अपनो सनातन धर्म सम्भारो ॥ हो बलदेव वेद ध्वनि घर घर व्है है तब ही कल्याण तुम्हारो ॥

२—हमारी कही मानो ऋषि सन्तानो ॥ छोड़ो मुफ्तखोरी की बानि अब अपनो परम धर्म पहिचानो ॥ स्वारथ में बरबाद भयो सब धर्म कर्म गुण ज्ञान पुरानो ॥ हो तुम पुत्र उनहि पुरुषन के जिन जग भोग रोग सम जानो ॥ दीन बनत अब दान की खातिर निश दिन निरखत मुख जो बिरानो ॥ करत कलङ्कित नाम ऋषिन को दर २ भ्रकमारत नादानो ॥ जप तप नियम धर्म तजि अपनो दीजिये दान कहत यजमानो ॥ झूठी करत धनियोंकी प्रशंसा लालच में सब धर्म नशानो ॥ झिड़की दपट सहत अधमन की नहीं कछु गनतमान अपमानो ॥ खोलि आंखि अब करो पुरुषारथ उभयो लोक सुख चहत सो जानो ॥ हित की बात " बलदेव " बतावत खुशी तुम्हारी चाहै मानो न मानो ॥

❋ श्रीपंडित रामचन्द्र जी ❋

श्रीमान् पण्डित रामचन्द्र जी शर्म्मा उपनाम चन्द्र निवासी ग्राम जैत ज़िलअ मथुरा कहते हैं—

लावनी—जो करत रातदिन तीर्थ पुरोहित भाई । सो सब प्रकार है सब सों अधम कमाई ॥ तजि धाम वाम बालक परदेशन

जावें। सहि भूख प्यास नित अगनित क्लेश उठावें॥ जब भागिन सों कहुँ तन क संहारो पावें। तब रचि प्रपंच भोरे भक्तन गोंख्यावें॥ तिनको कुटुम्ब सह लावें संग लिवाई। सो सब प्रकार है सब सों अधम कमाई॥१॥

जब मारग में चलि स्टेशन पै आवें। तब करत कुली को काम न हृदय लजावें॥ बालक त्यागै मल तौ जल लाइ धुवावें। रहिं सब प्रकार सों हाज़िर हुकम बजावें॥ हाटें करत अधम तम कर्म्म लोभ लपटाई। सो सब प्रकार है सब सों अधम कमाई॥२॥

घर लाइ कुटुम्ब भरि सेवा करि अपनावें। ठगई करिबे कों अनगढ़ कथा सुनावें॥ पग पग पै तिनसों नए २ दान करावें। बनिकें मुक्तीके दाता लूट मचावें॥ नांहि नेंक लाज लावत उर करत ठगाई। सो सब प्रकार है सब सों अधम कमाई॥३॥

॥ ९ ॥ श्रीठाकुर विक्रमसिंह जी ॥ १ ॥

श्रीमान् ठाकुर विक्रमसिंह जी गौड़ वर्म्मा ग्राम वनकोटा पोस्ट वज़ीरगंज ज़िला बदायूं निवासी कहते हैं—

॥ चौपाई ॥

नट निज कर्तब कला दिखाई। मोहत दर्शक जन समुदाई॥ १ ॥
गायक तथा समय अनुमानी। गावत मन मोहत वर बानी॥ २ ॥
चमत्कार बाज़ीगर कर कर। ऐसे और अपर विद्या धर॥ ३ ॥
यथा कवित यश गावत ढाड़ी। भांड़ भगतुआ आदि भिखारी॥ ४ ॥
निज निज गुणसे लेत रुपैय्या। गंगन के गुण गंगा मैय्या॥ ५ ॥
गंगा मैय्या जय करै तेरी। लै जिजमान आज सुधि मेरी॥ ६ ॥
तीर्थ जन्म सुफल करि लीजे। घनी दक्षिणा हम को दीजे॥ ७ ॥

१—गंगापुत्र

पाई पैसा सकैं न छोड़ी । जो नहिं देय करैं तिह भांड़ी ॥ ८ ॥
कोसन तें ले करि अगमानी । फोरैं सीस लैंय जिजमानी ॥ ९ ॥
तेली नट कलवार कुम्हारा । धोबी धानुक खटिक चमारा ॥१०॥
मैना खाती नाई धीमर । भील गड़रिया भंगी कंजर ॥११॥
काछी कुर्मी कोरी किसाना । लोधे पासिया धुना निदाना ॥१२॥
महा अधम नीचन के आगे । हैं घिघियात टका के लागे ॥१३॥
ऐसी दशा गंगावमनों की । लज्मालगति समुझि गतिइनकी ॥१४॥

* श्री पण्डित विश्वनाथ जी *

श्रीमान्यिवर पण्डित विश्वनाथ जी (वी. एन. शर्म्मा.) मंत्री आर्य्य समाज मथुरा तथा महा महोप देशक आर्य्य प्रति निधि सभा संयुक्त प्रदेश आगरा व अवध कहते हैं—

॥ कवित्त—१ ॥

दान के लिवैया भैया भैया करि टेरत हैं हाथहू को फेरत पीठि उन केरी पै । दर दर धावत हैं घर घर जावत हैं नेक नहिं लाजत हैं वद्धक भिखारी पै ॥ मान औ बड़ाई कहैं साथ उन केही रहैं कसे रहैं कमर सदा ही जो लुटेरी पै । जैसे चारु चतुर चकोर चिनगारी पर धावत हैं कुकुट ज्यों मल औ खखारी पै ॥

॥ वाणी—२ ॥

मीठी सीटी दई रेल खान पान सब छोड़ चले ॥ १ गोद में बेटवा बगल में बटुवा लठवा हाथ में लैके भगे ॥ २ दौड़ो दौड़ो माति मुख मांडौ छोड़ौ सब तुम काज अड़े ॥ ३ जो कोई आवै जान न पावै हाथजोड़ गल पांव पड़े ॥ ४ जब उतरे मुसाफिर दौड़ के आखिर सब

१ = गंगापुत्र

के सब मिल टूट पड़े ॥ ६ ॥ कहां से आये कौन जात हौ निज पुरखन का नाम कहो ॥ ६ हमी तुमारे तुमी हमारे लिखागये सो नाम पढ़ौ ॥ ७

॥ वाणी—३ ॥

लेत दान कर जोड़ मोड़ मुखड़ा सब देखत । बोलत हू कछु नांहि लोभ लालच के पेखत ॥ १ ॥ जात मान व्है चूर गर्व गुन सबै नसा वत । दलित मलित व्है रहत अन्त मंगताहि कहावत ॥ २ ॥ का जानत हैं नाहिं नाहिं सुख से हैं सोवत । मांगि मांगि के खात रहत हैं दर दर जोवत ॥ ३ ॥ पहन सकत नहिं वस्त्र साफ सुन्दर मनभाये । होत प्रफुल्लित नाहीं सदा मुखड़ा मुरझाये ॥ ॥४॥ लगत चित्त नहिं नेक ईश पूजा के मांही । बिलखत व्है के रहत मोद मुद सबै नसाहीं ॥५॥

नोटस—अगर हाथ न जोड़ें तो दान देवे कौन ? । दुष्ट दाता इन के साथ चाहे जैसा अधर्म = अनर्थ करें परन्तु यह दान— ग्राही दान पाने के लोभवश टुक टुक देखते रहते हैं किन्तु कुछ कहते नहीं । यदि साफ सुन्दर वस्त्र पहने और मुख पर प्रसन्नता प्रघट करें तो दान ही कौन देवे ? दान लिवैया और भीख मंगैया ईश्वर को नहीं जपते किन्तु पैसे को तकते हैं मैं ने निज नेत्रों से देखा है कि दान लेने वाले तीर्थों (नदी या तालाब) के घाटों की सीढ़ियों पर आसन बिछाकर तिलक छापे लगाकर कोई २ सुरमा, बिन्दी और कंघी को भी काम में लाते हैं । गोमुखी में हाथ डाल माला के मनिया =गुरिया गिनते हुऐ, काग समान चारों ओर हरएक को देखते रहते हैं और मौन धारण कर बगुला रूपी भगत बन मछली रूपी पैसे पर ध्यान धर गांठ के पूरे आंखके अंधे जल, थल, मल, हल के प्रेमी के आने की आस की सांस भरने लग पड़ते हैं । भोले भाले मूर्ख दाता लोग इन पाखण्डियों के कपटी स्वरूप पर मोहित होकर कुछ न कुछ चढ़ावा चढ़ाही जाते हैं और यदि कोई इन को चढ़ाना= देना भूल से भूल

जाय तो ये प्रतारक, प्रपंची, पापी, जापी एकदम से हूं हूं करते हुए हाथ का झाला देने लगते हैं, और यदि इतने पर भी अर्थात् इन मिथ्या रूप धारियों के हूंकारे पर भी कोई इन विश्वास घातक झूठे जापक दान ग्राहियों और भिखारियों को न देवे तो ये ठगिया छलिया उठकर चिल्लाते हुए झप = झट से झपट कर झटकादे दाता के माल को झपट्टामार झपट लेते हैं और दाता विचारा सिर खुजलाता और हाथ मसलता हुआ रहजाता है। बस इनके इन्हीं कुकर्मों को देखते हुए किसी कविने सत्य कहा है—

सुमरन कर में सुरत न हर में कहो ध्यान यह कैसा।
ऊपर से तो सिद्ध बन बैठे अन्तर पैसा पैसा ॥

और इन्हीं धर्म्म से हटे हुए तीर्थ वासियों के उक्त कर्त्तव्यों पर निम्न लिखित कहावत = मसल = लोकोक्ति बनी है ॥

तीरथ मोटा । लोग खोटा ॥

नोट पर नोट—सबही तीर्थ वासी ऐसे कुकर्मी नहीं होते। कोई कोई तो बड़े विद्वान, धर्मारूढ़ और परमात्मा के सच्चे भक्त होते हैं॥

॥ दोहा ॥

दान हेत यजमान के। नीच ऊंच करि काज।
दौरत स्वान समान सो। आनि मानि तजि लाज ॥ ४ ॥
बोझ ऊदे खर सम फिरैं। याचैं स्वान समान।
सेवा सुपच समान की। मंगन तऊ न अघान ॥ ५ ॥

॥ सोरठा ॥

दान लेत हरषात। करि विनती बहु भांति सों।
जो न मिलत बिलखात। शत्रु समझ गाली बकत ॥ ६ ॥
करि बिनती बहु भांति। सत्य त्यागि मिथ्या वदत।
पूंछत जाति न पांति। दान प्रदी छिण देव गण ॥ ७ ॥

लड़े निकारैं दांत । दादा दादा दान करु ।
कर पसार घिघयात । हम तुमरे बछरा गऊ ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

देखत पात्र कुपात्र नहिं । गहत न मर्मधर्म ।
जोरि हाथ दादा करत । मंगता हमरो कर्म ॥ ९ ॥
श्वान प्रहीता स्वान अरु । इनकी एकहि चाल ।
दन्त पुच्छ काढ़े फिरत । निशदिन रहत विहाल ॥ १० ॥ रक्त पियासे मसक
ज्यों, लेत रक्तको चूस । टका पियासे त्योंहि भिखु, लें दाताको मूस ॥ ११ ॥

॥ सवैया ॥

कहत बेटा बाप सों भैया सों भैया नित करैं । इष्ट मित्रन सों लड़ाई
दारा तक को परि हरैं ॥ करैं कलह नित कुटुम जनसे लाज नहिं मनमें
धरैं । इहि भांति सों मंगता महाधम पेट को अपने भरैं ॥ १२ ॥

॥ दोहा ॥

कोई निज सन्तान को । देत शास्त्र को ज्ञान ।
कोई चाकरी हेत सुत । करत पास इम्तिहान ॥ १३ ॥
कोई खेती वाणिज हित । निज धन्धा सिख देत ।
पर मंगता भिक्षाहि हित । सिखवत छलन अनेक ॥ १४ ॥

भिक्षा शिक्षा—॥ दोहा ॥

धर्म कर्म तुमरो यही । जप पूजा और पाठ ।
रात दिना घेरे रहो । घाट बाट और माठ ॥

(वाणी—१६)

मांगा करो पुत्र सदा ही भीख को । मानों हमारी यह नीकी सीख को ॥
जाती कुजाती का ख्याल छोड़ के । मैली टोपी फटासा दुपट्टा ओढ़के ॥
मांगो पुकारो घण्टों रटा करो । जब लौं न पैसा तुम गोद में धरो ॥

(वाणी—१७)

बाबा लड्डू पिता बतासा मैया मोर इमिरती है । बहिनी खुरमा दादी चुरमा सासु जलेबी बनती है ॥ धरो नाम तुम सब खाने के सब खाने में मजा धरा । राजपाट रुजगार नौकरी इन में क्या है भला धरा ॥

(वाणी—१८)

धात्री निधि को पाय धाय घर में पधरावत । बैयर ढिंगहि बुलाय ताहि याहि विधि समझावत॥यह हमरे यजमान इनाहि बल हम सब पावत । होइ न इन को कष्ट देवन सम इनको ध्यावत ॥ गंग जमुन जल देव आदि सब जड़ जग जानत । पै यह चेतन देव इनहि सब कुछ हम मानत ॥ इनाहि इष्ट जो होइ ताहि तुम पूरन करियो । काहू बात को कष्ट न होय सो याद रखियो ॥ तुमरे जुम्मे भार अहै सेवा इन केरी। जौन करें आदेश मत करियो वामें देरी ॥ हम अब बाहर जात रात को घर नहिं ऐ हैं । जबलों अरु दो चार नहिं जजमानहि पैहैं ॥ करि बैयरे उपदेश आइ जजमान सों बेले=बोले । यह घर तुमरे हेत अहै सब तुमरे चेले ॥ करि दर्शन अस्नान करो ब्यालू मन भाई । शयन हेत है खाट बते है तुमै य भाई ॥ मत करिये संकोच जानि अपन घर कीजे । हम अब बाहर जात आप सुख सों सो लीजे ॥

(वाणी—१९)

यही सीख दें पिता पुत्र को जो मांग मांग के खाते हैं । पुरुषारथ को छोड़ निकम्मे मन में नहीं लजाते हैं ॥ भला बुरा तुम जितना कहि को ज़रा नहीं शर्मातेहैं । भंगी चूहड़ नीच जाति वो सबसे ही दबमातेहैं ॥ देश विदेश रूप नाना धरि सबका धर्म नसाते हैं । झूठी सच्ची मुंह देखी करि बातें सबहिं रिझाते हैं ॥ दाता राजी होवे जिसमें ऐसी बात बनाते हैं । हाय २ धिक्कार उन्हें जो दान मांग कर खाते हैं ॥

।भिक्षुक मांगनेके लिये निम्न लिखित वाणी का उच्चारण किया करते हैं।।

॥ भिक्षुक—वाणी ॥

बनी दाल घर में हमारे अलौनी । कछू दोतो है नाथ होवे सलौनी ॥
फटी धोवती पहने बैय्यर हमारी । रहे मौन के कौन बैठी बिचारी ॥
शरम से कदम रखती घरसे न बाहर । दिला दीजिये धोती उसको दयाकर
वो लड़के की धोती जो सूखेथी अंदर । उसे लेके भागा सबेरेही बन्दर ॥
तभी से वह घर बीच नंगा पड़ा है । मंगानेको धोती के लिये अड़ा है ॥
लली की जो थी गुलफुली ऊनी सारी । उसे खागई रक्खे २ कसारी ॥
बहुत दिनसे फिरती वो नंगी उघारी । पड़े शीत कांपे है थर२ बिचारी ॥
बीमार मैया पड़ी खाट पै है । दवाई को पैसा नहम पै कछू है ॥
कछू बिना छोरी औंधी पड़ी है । पेड़ाको भैना वहु लड़ पड़ी है ॥
कलेवाको लड़का व लड़कीअड़ेहैं । पड़े रोवते घर में जिद्दी बड़े हैं ॥
हमारे भी कपड़े कुचैले फटे सब । सवेरे से दाता मिले सो नटेसब ॥
बिना मिर्च के भंग घोटी पड़ी है । बिना चोपड़ा रूखी रोटी पड़ी है ॥
तुम्हीं हो हमारे पिता और माता । तुम्हीं कालिवली हो तुम्ही कर्णदाता ॥
तुम दाताहो दानी हो राजा हमारे । गैया और बछियाहैं हम तो तुमारे ॥
हमहैं पेड़ा खानी तुम्हारी ही गैया । तुम्हैं रक्खे आनन्द में गंगा मैया ॥
यहां के दिये दान का पुण्य भारी । पुराणों में गाते पुरारी खरारी ॥
इहां के दिये दान का पुण्य भारी । हमारी बातोंको दीजो न टारी ॥
नहा कर घना दान दीजे करारी । कहते हम तुमसे होके लाचारी ॥
बस अब न्हाके कुछ दान देदीजै दाता। तुम्हें खुश हमेशा रक्खे गंगा माता॥
तुम्हारा दिया जबलों खाते रहेंगे । तुम्हारी हो जै जै मनाते रहेंगे ॥

कोई कोई कहते हैं—

कहो भले जिजमान बहुत दिन बीते आये । तब सों वह पकवान नहीं अबलों हम खाये ॥ जो सांड़ी तुम दई ताहि में छोरीहि दीन्हा । पुत्र बधु के देन हेत वादा है कीन्हा ॥ अब की वार सुन्दर हार हमैं

इक दीजे। तुमरी इच्छा पूर्ण होय आशिष यह लीजे ॥ करचौ पुत्र का व्याह बहू सुन्दर सी आई। लागो ताके पांय देउ कुछ मूंह दिखाई ॥ ये बहुआ खोले लाज ज़रा मुखरा दिखलावो। जो कुछ तुमको देय ताहि लैकैं सुख पावो ॥

उक्त पण्डितजी आगे चल कर फिर कहते हैं—

सवैया—तेज हीन मलीन मुख दुःख चिन्ह सकल बताय के। कथुकित कथरिया ओढ़ि तन पर नग्न पद शिर जाय के ॥ घर की कथा कलुषित कपट मय नयन नीर बहाय के। कहत अति आतुर अनोखी पड़त पायन धाय के ॥ १ ॥

देखि सुनि गुनि हंसत बुध जन भांति बहु ठट्ठा करैं। उपहास मय परिहास पूरित रसिक जन कौतुक करैं ॥ यहि भांति कायर कपट मंगता लीलिया नई नित करैं। पर हाय हाय न कोस आवत भांति काहि वर्णन करैं ॥ २ ॥

॥ श्रीमान् पण्डित वर मुरलीधर जी ॥ कहते हैं—

कवित्त—काशी गया आदिके पंडा बड़े भारीहैं मुसंडा देखो जात्री के हांथ बांध लेत उनसे रुक्कड़ हैं। बड़े भारी हैं बेहया उन में किञ्चित नांहीं हैं दया। वस्त्र पात्र कों छीन लेत ऐसे भारी फक्कड़ हैं ॥ मुरलीधर बखानें अर्थ तीर्थ कौन जानें पाप मोचत भी बखानें पोप कैसे बुभक्कड़ हैं १

मथुरा वृन्दावन के वासी बड़े हृदय के उदासी करत कृष्ण की हांसी वने उत्तम ब्रजवासी हैं। राधाअरु कृष्ण स्वामीमैं भरत उनकी हामी जे हैं धर्म चारी निन्दा पोप ने निकासी हैं ॥ बोब भागवत बनाई करत मुनिन हंसाई हैं। मुरलीधर गावे जय यमुना की मनावे केवल जीविका के निमित्त रहस लीला निकासी हैं ॥ २ ॥

गोकुल के गुसाई करत द्रव्य की लिवाई विषय भोग के ताईं शयन आरती बनाईहैं।समरपन कराईहरन द्रव्य के ताईं सर्व चेली बनाई नग्न

गोकुल में बसाई हैं ॥ सौ भाग्यनी बनाई केवल जीविका के ताई प्रथम सबने जो आई विषय भोगको बुलाईहैं। मुरलीधर कहैं करत धर्मकी नसाई नेगोकुलकेगुसाई मिथ्या कहानीबनाईहैं॥३॥देखो भा.सु.प्र.अं३१पृ१८-१९

* शास्त्रीय-फुटकर-वाक्य *

१—नाम भजन को आलसी, खैवे को तैयार।
तुलसी ऐसे पतित को, बार २ धिक्कार ॥

बहुधा तीर्थपुरोहित ईश्वर स्मरण नहीं करते पर खानेको तत्पर रहतेहैं॥

२—बड़े पेट के भरन को, हैं रहीम दुःखबाढ़ि।
याते हाथी हहरि के, दिये दांतद्वइकाढ़ि ॥

बहुधा तीर्थ पुरोहित ही बहुत (१०-१०, १५-१५ सेर) खाया करतेहैं॥

३—अन्य धृतं वासो न विभृयात्=दूसरे का पहरा हुआ वस्त्र धारण न करो ॥ देखो गौतम स्मृति अ० ९ ॥

उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च ॥ } मनु अध्याय ४ श्लोक ६६

अर्थ-अन्य मनुष्यों के धारण किये हुए जूता, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, फूलोंकी माला और मट्टीके कमण्डलुको धारण न करे। [इसीके अनुसार उतरन का पहनना नीच काम मानते हैं] ॥ बहुधा तीर्थ-पुरोहित तो चारों वर्णों की उतरन ही पहना करते हैं ॥

४—क्रय क्रीता चया कन्या पत्नी सा न विधीयते । तस्यां जाताः सुता स्तेषां पितृ पिंडं न विद्यते ॥ } अत्रिस्मृति श्लो. ३८७

अर्थ—मोल ली हुई जो कन्या है वह भार्या नहीं होती। और उस के पैदा हुए पुत्रों को पितरों के पिंड देने का अधिकार नहीं होता है ॥ बहुधा तीर्थ पण्डे मोल ली हुई कन्या ही से विवाह किया करते हैं।

यदि विवाह के समय रोकड़ी रुपया नहीं दे सक्के तो ३—३ सौ या ४—५ सौ रुपयों का स्टम्प लिख रजिस्टरी करा दिया करते हैं ॥

५—न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णी याच्छुल्कमण्वपि ।
गृह्णञ्छुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोऽपत्य विक्रयी ॥

देखो मनु० अध्याय ३ श्लोक ५१ अर्थ—कन्याका बाप ज्ञानवान् थोड़ा सा भी द्रव्य (दामाद से) ग्रहण न करे क्योंकि वह मनुष्य सन्तान का बेचने वाला कहाता है जो इस प्रकार का धन लेता है ॥ बहुधा तीर्थ पण्डे अपनी कन्याओं को खले मदान दिन धौरे बेचा करते हैं । यदि कन्या—मूल्य के रुपये नकद नहीं पाते तो दामाद से या दामाद के कुटुम्ब वालोंसे ब्याज ठहराकर और पक्का कागज़ लिखाकर रजिस्टरी करा लिया करते हैं ॥

६—अष्टशल्या गतं नीरं पाणिना पिवते द्विजः । } अत्रि स्मृति
सुरापानेन तत्तुल्यं तुल्यं गोमांस भक्षणं ॥ } श्लोक १८८

अर्थ—अष्टशल्ली (चर्स=पुर) के जलको जो द्विज हाथ से पीताहै वह मदिरा के पीने और गौ मांस भक्षण के समान होता है ॥ बहुधा तीर्थ पुरोहित र = चरसा के पानी को भी पिया करते हैं ॥

७—ऊर्ध्वं जंघेषु विप्रेषु प्रक्षाल्य चरण द्वयं । } अत्रि स्मृति
तावच्चांडाल रूपेण यावत्गंगां न मज्जति॥ } श्लोक १८९

अर्थ = जो खड़े हुए ब्राह्मण के दोनों चरण धोते हैं वे तब तक चांडाल रूप रहतेहैं जब तक गंगास्नान न करलें ॥ बहुधा तीर्थपण्डे खड़े होकर ही अपने पैर धुलाया करते हैं ॥

८—एक पंक्त युपविष्टानां विप्राणां सह भोजने । } पाराशर स्मृति
यद्येकोपि त्यजेत् पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत्॥ } अ० ११।८

अर्थ=एक पंगति में बैठें हुए संग भोजन करते ब्राह्मणों में यदि एक ब्राह्मणभी पात्र को त्याग दे अर्थात् भोजन करता खड़ा होजाय तो सब ब्राह्मण शेष अन्न को न खावें ॥

भुंजानेषुतु विप्रेषुयोग्रे पात्रं विमुंचति । | पराशर
समूढ़ः सच पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः सखलूच्यते ॥१ | स्मृति
भाजनेषुच तिष्ठत्सुस्वस्ति कुर्वंतिये द्विजाः । | अध्याय ११
न देवास्तृप्ति मायांति निराशाः पितरस्तथा॥२ | श्लोक १९-२०

अर्थ=जो ब्राह्मणों के भोजन करते हुए पहिले पात्र को छोड़ता (खड़ाहोता) है वह मूढ़ बड़ा पापी और ब्रह्महत्यारा कहा जाता है ॥ १ ॥ भोजन करते हुए जो ब्राह्मण स्वस्ति (कल्याण हो) कहते हैं उन पर देवता तृप्त नहीं होते और पितरभी निरास जातेहैं ॥२॥

बहुधा तीर्थ पण्डा गण जूठन— ‌ का विचार न कर एक स्थान पर ही आते, बैठते, खाते, उठते, जाते रहतेहैं अर्थात कुछ लोग खाते रहतेहैं, कुछ लोग खाकर उठ बैठते हैं, कुछ लोग उन उठे हुओं की जगह पर फिर आ बैठते और खाने लगतेहैं अर्थात एक स्थान परही जूठन—कूठनका विचार न विचारते हुए आने जानेका धमचक्कर लगा कर खाने पीने का चक्कर बांध देतेहैं। और खाते हुए " कल्याण हो २ ! जैहो २ ! " पुकार २ कर कहते रहतेहैं ॥

९.... नाधीयीताभियुक्तोपि यानगोनच नौगतः | शंखस्मृति
देवायतन वल्मीक श्मशान शव सन्निधौ ॥ | अ० ३।९

अर्थ = सवारी, नाव और देव मंदिर में बामी, श्मशान और शव के समीप बैठ कर न पढ़े ॥ बहुधा तीर्थ पुरोहित ही देवालयों में पढ़ा करते हैं ॥

१०.... ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । | मनुस्मृति
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापितैःसह॥ | अ० ११।५४

अर्थ = ब्रह्महत्या, शराब पीना, चोरी करना, गुरू की स्त्री से विषय करना और ऐसे कामके करने वालों के साथमें मेल मिलाप अर्थात् मित्रता करना, यह पांच महा पातक हैं ॥ बहुधा तीर्थ पुरोहित शराब भी खूब पिया करते हैं ॥

११–प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्ववर्णा श्रमेनराः । } ब्रह्मखंड
तमाल भक्षितं येन सगच्छे न्नरकार्णवे ॥ } पुराण

अर्थ= इस घोर कलियुग में जो मनुष्य तम्बाकू खाता अथवा पीता है वह नरक को जाता है ॥ बहुधा तीर्थ पुरोहित लोग इस सत्यानासी तमाखू के खाये--पीये रहही नहीं सक्ते ॥

१२–धूम्र पान रतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नरः । } पद्म
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः॥ } पुराण.

अर्थ—जो मनुष्य तम्बाकू पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है, वह नरक को जाता है और ब्राह्मण गांव के शूकर का जन्म लेता है ॥ बहुधा तीर्थवासी पण्डे तो रात--दिन तमाखू पीते ही रहते हैं ॥

१३—शङ्ख चक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते । } लिंग
स जीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्व धर्म वहिष्कृतः॥ } पुराण

अर्थ—जिस मनुष्य के शरीर पर तपाकर शङ्ख चक्र की छाप लगाई गई हो वह जीते जी मुर्दा और सर्व धर्मों से पतित के समान त्यागने योग्य है ॥ बहुधा तीर्थ पुरोहित सैंकड़ों बरन सहस्त्रों की शुमारमें अपने शरीर को दगधाने = जलवाने वाले होते हैं ॥

१४—वेदविहीनाश्चपठन्तिशास्त्रंशास्त्रेणहीनाश्चपुराणपाठाः।
पुराण हीनाःकृपिणोभवन्तिभ्रष्टास्ततोभागवताभवन्ति ॥

देखो अत्रिस्मृति श्लोक संख्या ३८२॥अर्थ -वेदसे रहितलोग शास्त्रपढ़तेहैं शास्त्रसे हीन पुराण बांचते हैं, पुराणसे हीन हल जोतते हैं और उससे पतित भागवत पढ़ते हैं ॥

१५—यो ऽनधीत्य द्विजो वेद मन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

देखो मनुस्मृति अध्याय २ । १६८ ॥ अर्थ— जो ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य वेदों को नहीं पढ़ता और अन्य ग्रन्थों में परिश्रम करता है वह

भीते जी कुटुम्ब सहित शीघ्र शूद्र हो जाता है ॥ प्रायः देखने में आता है कि आजकल के बहुधा तीर्थ पुरोहित प्रथम तो काले अक्षर को भैंस बराबर समझते हैं अर्थात् अनपढ़ होते हैं । यदि कुछ लोग अक्षर पहचान ने वाले होते हैं तो वह दान लीला, मान लीला या हीरा रांझा या मारूढोला या आला ऊदल को पढ़ा करते हैं । यदि अधिक परिश्रम किया तो चोर जार शिखामणी वाले-पुस्तक नाम "गोपाल सहस्र नाम" और उसके भाई "विष्णु सहस्र नाम" को कण्ठाग्र कर लिया करते हैं । और यजमान को प्रसन्न करने के लिये तो सब ही लोग इधर उधर के १०—५ चुटकलेतो अवश्यही सीख लिया करते हैं॥

१६—यस्यात्म बुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः । यत्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित् जनेष्व भिज्ञेषु स एव गोखरः ॥ श्रीमद्भागवत ॥

अर्थ=त्रिधातु की मूर्त्तियों में जो आत्मनाम ईश्वर बुद्धि रखता है और जल में जो तीर्थ बुद्धि रखता है वह मनुष्य केवल बैल और गधा जैसा है ॥ तीर्थ पण्डे तो जल ही को तीर्थ समझते हैं ॥

१७—नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः॥श्रीमद्भागवत॥

अर्थ=जल मय स्थान को तीर्थ नहीं कहते और न मिट्टी और न शिलाओं की मूर्त्तियों को देवता कहते हैं ॥ तीर्थ पुरोहित तो जल ही को तीर्थ जानते हैं ॥

१८—तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ठ पाषाण मृण्मये ।
प्रतिमादौ मनोयेषां ते नराः मूढ़ चेतसः॥ } महाभारत

अर्थ=तीर्थ [नदी, नाले, झरने, तालाब, सरोवर और पोखर आदि जल स्थान] और पशु हिंसक यज्ञों में और काष्ट, पाषाण, मृतिका की प्रतिमाओं में जिनका मन है वे मनुष्य मूर्ख चित्त वाले हैं॥ तीर्थ वासियों का तो इन्हीं में मन लगा हुआ है ॥

१९-ऊर्ध्व पुंड्र विहीनस्य श्मशान सदृशं मुखं ।
अवलोक्य मुखंतेषा मादित्य मवलोक येत् ॥ १ ॥
ब्राह्मणः कुलयोविद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेतादृशं देवी मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥ २ ॥

अर्थ = जो लम्बा तिलक [त्रिफंकी वैष्णवी मार्क] धारण नहीं करता उसका मुंह श्मशान के समान होता है अतएव देखने योग्य नहीं, कदाचित् देख पड़े तो इसका प्रायश्चित करे अर्थात् तुरन्त सूर्य्य का दर्शन करलेवे ॥ १ ॥ ब्राह्मण कुलोत्पन्न जो विद्वान होकर भस्म धारण करे उसको शराब के जूंठे बासन की नाईं त्यागदेवे ॥ २ ॥ सहस्रों तीर्थ पण्डे वैष्णवी मार्ग का त्रिफङ्का तिलक नहीं लगाते और भस्म धारण करते हैं ॥ देखो पद्म पुराण ॥

२०—विभूति र्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्ष धारणम् ।
नास्य शिव मयी वाणी तंत्यजेदन्त्यजं यथा ॥

अर्थ=विभूति=भस्म जिसके माथे पर नहीं और अंग में रुद्राक्ष नहीं पहिने मुंह से शिव शिव ऐसा न कहे वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है ॥ ऐसा न करने वाले तीर्थ पुरोहितों में सहस्रों हैं ॥ देखो शिव पुराण ॥

२१—भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्र परिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवो घोर रूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायण कलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥

अर्थ = जो शिवजी के भक्त हैं और उनकी सेवा करतेहैं सो पाखण्डी और सच्चे शास्त्रके वैरीहैं इसलिये जो मोक्षकी इच्छा रखतेहैं सो भयानक भेषवाले भूतोंके स्वामी महादेव को छोड़ें और मन स्थिर और शान्ति करके नारायण की पूजा करें ॥ बहुधा काशी के वासी तो शिवजीही के उपासक हैं॥ देखो भागवत ॥

२२-विष्णु दर्शन मात्रेण शिवद्रोहः प्रजायते ।
शिव द्रोहान्न सन्देहो नरकं याति दारुणम् ॥
तस्माद्वै विष्णुनामापि न वक्तव्यं कदाचन ॥

अर्थ—जब लोग विष्णु का दर्शन करते हैं तब महादेव क्रोधित होते हैं और उनके क्रोध से मनुष्य महा नरक में जाते हैं इस कारण विष्णु का नाम कभी न लैना चाहिये ॥ बहुधा द्वारका और जगन्नाथपुरी के पण्डे तो विष्णु ही के दर्शन करते हैं ॥

२३-यस्तु सन्तप्त शङ्खादि लिंग चिन्ह धरोनरः ।
स सर्व यातना भोगी चांडालो जन्म कोटिषु ॥

अर्थ—जो मनुष्य तपे हुए शङ्खादिकों के चिन्हों को धारण करता है वह सब नरक यातनाओं=दुःखोंको भोगताहै और करोड़ जन्म पर्यन्त चाण्डाल होता है ॥ द्वारका पुरी के तीर्थ पुरोहित तो ऐसे चिन्हों को धारण किये बिना रहतेही नहीं ॥ देखो पृथ्वी चन्द्रोदय ॥

हे महाराज ! उक्त वाक्यों से अब तो आपको भली भांति ज्ञात होगया होगा कि वर्त्तमान समय के तीर्थ पुरोहित (कुछ एक नहीं) कैसे धर्म्म के प्रतिकूल कार्य्य कर रहे हैं ॥

बस धर्म्म के विरुद्ध चलने वाले ऐसे अविद्वानों को जो दान दैना है वह भी शास्त्रकी आज्ञा का उल्लंघन करनाहै ॥ देखिये ! श्रीकृष्ण देवजी कहते हैं कि जो मनुष्य शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करते हैं अर्थात् ऐसों को दान देते हैं उनको न सिद्ध न सुख न परमगति प्राप्ति होती है । यथा—

यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्त्तते काम कारतः ।
न स सिद्धमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥

अर्थ—दोहा = वेदाज्ञा को त्याग कर जो स्वतंत्र होजात ।
सो सिद्धी सुख को तथा परगति को नहिंपात ॥

देखो श्रीमत्भगवत्गीता अध्याय १६ श्लोक २३

मनुजी महाराज ने कहा है कि ऐसों को अर्थात् पाषण्डी, निषिद्ध कर्म करने वालों, बिडालव्रत वालों, शठों, वक्र वृत्ति वालों और वेद में श्रद्धा न रखने वालों अर्थात् वेद की आज्ञा के प्रतिकूल चलने वालों को वाणी मात्र से भी न पूजे। यथा—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकाञ्छठान्।	मनुस्मृति
हैतुकान्वकवृत्तींश्चवाङ् मात्रेणापिनार्चयेत् ॥	अ० ४।३०।

श्री मान्वर पण्डित भीमसेन जी महाराज इटावा निवासी उक्त श्लोक का भावार्थ निम्न प्रकार प्रकाशित करते हैं—अतिथि पूजन धर्मकी उन्नति के लिये है सो धर्मात्माओं के पूजन से धर्म की उन्नति हो सक्ती है। तथा धर्म से विरुद्ध चलने वाले अधर्मियों के पूजन से सांप को दूध पिलाने के समान अधर्म वा दुःख की ही उन्नति का सम्भव होने से वैसों के पूजन का निषेध किया है। सत्कार के लिये भोजनादि सब सामग्री के प्राप्त न होने पर भी शुद्ध हृदय वालों का केवल वाणी से भी पूजन करना आवश्यक माना है। सो वेदरहित पाषण्डी आदि का वहभी न करना चाहिये॥ देखो मानवधर्म मीमांसा भाग २ पृ० ४१–४२॥

श्री अत्रि जी कहते हैं–जिन देशों में विद्वानों के भोगने योग्य पदार्थों को मूर्ख भोगते हैं वे देश भी वृष्टि के अभाव की इच्छा करते हैं अथवा उन में महान भय होता है॥ जैसे आज कल भारतवर्षमें॥

विद्वद्भोज्यम विद्वांसोयेषु राष्ट्रेषु भुंजते।	अत्रि स्मृति
तेप्यनावृष्टि मिच्छंति महद्वाजायते भयं॥	श्लोक २४

इसी प्रकार चाणक्य मुनि ने कहाहै कि जिस देश में मूर्खों का आदर सत्कार और विद्वानों का निरादर होता है उस देश में अकाल, मरी और शत्रुभय अवश्य होता है। यथा—

अपूज्या यत्र पूज्यंते पूज्य पूजा व्यति क्रमः । | चाणक्य
तत्र त्रीण प्रवर्तते दुरभिक्षा मरणम् भयम् ॥ | नीति

अर्थ दोहा=जहं अपूज पूजन लहै—पूज्य अनादर पाय ।
तहं अकाल, रिपुभय, मरण—अवश प्रजा विनसाय ॥

बस भारत के गारत होने का कारण भी यही अविद्वान=मूर्ख दान ग्राही और भिखमंगे हैं जो कि रातादिन पुजापा खाया, पीया और लिया करतें हैं ॥

आगे चलकर मुनिजी पुनः कहते हैं—

मूर्खा यत्र न पूज्यंते धान्यं यत्र सुसंचितम् ।
दाम्पत्य कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता ॥

अर्थ = जहां मूर्ख नहीं पूजे जाते, जहां अन्न संचित रहता है । और जहां स्त्री पुरुप में कलह नहीं होता वहां आपही लक्ष्मी विराजमान रहती है ॥ देखो चाणक्य नीति अ० ३ श्लो० २१ । इससे स्पष्ट विदित होता है कि भारतवर्ष के दलिद्री होने का यही एक बड़ा भारी कारण है कि यहां मूर्खों की अधिक पूजा होती है अर्थात् मूर्ख लोगों को बहुत कुछ दान दिया जाता है ॥

॥ भिखारी ब्राह्मणों से प्रार्थना ॥

हे मेरे प्यारे भीख मांगने वाले ब्राह्मण भाइयो ! क्या आप अपने धर्म, कर्म और गौरव को भूलगये ? सो भीख मांगते फिरते हो । क्या आपको अपने कर्तव्यों पर सन्तोष नहीं ? सो भिक्षा लेते डोलते हो । अरे ! आपको कुछ भेट पूजा चढ़ाये बिना तो संसार का कोई काम ही नहीं चलता । देखिये ! जब किसी यजमान के यहां कोई किसी प्रकार का मंगल कार्य जैसे सोलह संस्कारों में से कोई एक यज्ञोपवीत या व्याह आदि और ग्रह और कूपादि प्रतिष्ठा होती है तो सबसे प्रथम आपही बुलाये जाते हो । और आप भी तुरन्त ही नाईके साथ

ही जा पहुंचते हो। क्यों नहीं ? महाराज ! आज कल तो नाई और ब्राह्मण साथही साथ रहते हैं। कहा भी है—

॥ जहां गंगा तहां झाऊ। जहां बम्मन वहां नाऊ ॥

उस समय आपका स्वरूप (चांद घुटी हुई--तोंद बढ़ी हुई--धोती लथराती हुई-खौर या विन्दीलगी हुई---नेत्रों में स्याही पड़ी हुई--मुंह में बीड़ी खाई हुई--चद्दर ओढ़ी हुई--बगल में पोथी दबी हुई--हस्त में लकुट पकड़ी हुई) भी एक अद्भुत प्रकार का दिखाई देता है। बैठतेही आप अपना कार्य करने लग पड़तेहो अर्थात् सबके समुआवन; सुन्दर२ सपर्ण, स्तम्भ, पुष्प, पत्रादिकी रचना रच; पीली लाल लकीरें कर; चूनका चौक पूर; एक चौकी पर कपड़ा बिछा और उस पर अनाज के नो कोठे बना और उनमें नवग्रहों को बुला बिठा; मिट्टी की एक डेली पर कलाया लपेट और उसमें पारवती शिव सुत, गणेश, जिसका माथा हाथी के मस्तक और पेट पानीके पुर समानथा जिसको पारवतीने अपने शरीर के मैलसे बनायाथा; फिर शनैश्चरकी कुदृष्टि से उसका सिर कटकर अलग जापड़ाथा; फिर पारवतीके प्रसन्न करनेके लिये एक हथिनीके बच्चेका मुण्ड काटकर उस रुण्ड पर जोड़ दिया गयाथा; जिसका पेट बहुत खाने से बढ़ गयाथा; जिस का एक-दन्त संग्राम में परुशरामने कुल्हाड़ा मारकर तोड़दियाथा; कोई कहताहै कि गणेशही ने स्वयं अपना एक दन्त उखाड़ कर परुशराम पर फैंक माराथा, जिसका वाहन एक छोटासा जानवर मूसा था, जिसका पूजन सबसे पहिले करनेके लिये पारवती के प्रसन्नार्थ चौमुखे ब्रह्माने कोई कहताहै कि तीन नेत्रवाले, त्रिसूल रखने वाले, नग्न रहने वाले, भस्म लगाने वाले, बैल पर चढ़ने वाले, मुण्ड माल पहन ने वाले, मस्तक में चन्द्रमा और जटाओं में गंगा को धारण करने वाले, बाबा महादेव ने सब को हुक्म दिया था और जिसकी प्रशंसा में हिन्दू

लोग कहा करते हैं—गजमुख सुखदाता जगत, दुख दाहक गणईश। पूरण अभिलाषा करो, शम्भू सुत जगदीश॥ का आवाहन कर अर्घ. अर्घ, पाद्य. पाद्यं, धूपस्थाने अक्षतानि, दीपस्थाने अक्षतानि, नैवेद्य स्थानेऽपि अक्षतानि परन्तु दाक्षिणास्थाने कदापि अक्षतं न समर्पयामि अर्थात् नैवेद्य के घर तक तो सूखे चांवलों से ही टरका देते किन्तु दाक्षिणा के ठौर द्रव्य लिये बिन नहीं छोड़ते। इसी प्रकार मनुष्य की बीमारी में मरते समय में एकादशामें तेरहवी और सत्तरथीमें मासीमें बरसी और चौवरसीमें अच्छे अच्छे पदार्थ और रोकड़ी पातेहो। और सदैव मुर्दोंके सराध्य में आदर सहित जीमते रहते हो॥

महाराज ! आपकी आज्ञा के बिना मनुष्य ईंधन नहीं खरीद सक्ते, खाट नहीं बुनवा सक्ते, बाल नहीं बनवा सक्ते, पानी के घड़े नहीं भरवा सक्ते, कहीं बाहर प्रदेशको नहीं जासक्ते, पशू नहीं पाल सक्ते, धोबीसे कपड़े नहीं धुलवा सक्ते, स्त्री चूड़ा नहीं पहन सक्ती, स्त्री सिर से नहीं न्हा सक्ती, स्त्री नथ, बिछुआ नहीं पहन सक्ती, आप को दिये बिना कोई नया फल नहीं खा सक्ता बस तात्पर्य यह है कि महाराज ! आपको कुछ भेट दिये और आप से आज्ञा लिये बिना कोई कुछ नहीं कर सक्ता॥

महाराज ! आप बड़े हो, बड़ों से भी बड़े हो, महान बड़े हो, राम कृष्णसे भी बड़ेहो क्योंकि उन्हों ने भी तो आपका पूजन किया था। आप नवग्रहोंको शान्ति करने वालेहो, आप देवों के देवहो, देखिये ! इसके लिये कैसा अच्छा प्रमाणहै—देवताओंके आधीन सब जगत, मंत्रों के आधीन सब देवता और वे मन्त्र आप ब्राह्मणोंके आधीन हैं। यथा—

> दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः ।
> ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मण दैवतम् ॥

यह आपही की सामर्थ है कि मन्त्र के बल से चाहें जिस देवता को बुला उससे चाहें जैसा [बुरा–भला] काम करा लो, यह आपही की सामर्थ्य है कि एक स्थान पर और एक ही समय में नौओं ग्रहों को बुलालो, आप सब के पाप दूर करने वाले हो, आप सबके क्लेश काटने वाले हो, आप सबको स्वर्ग पठाने वाले हो, आप सब को मोक्ष देने वाले हो, आपके वाक्य भगवान् के वचनों के तुल्य हैं। यथा–

ब्रह्म वाक्यं जनार्दनः ॥

तभी तो आपके वचनों से सब लोगों को लाभ होता है. अर्थात् आपके आशीर्वाद से किसी को पुत्र, किसी को धन, किसी को धना, किसी को धरती, किसी को आरोग्यता, किसी को बल मिलता है, वैतरणी नदी से भी जोकि यहां से ३० कोटि कोश दूर है और लोहू और राध से भरी हुई चारसौ कोश चौड़ी है। यथा—

नीयन्ते तर्तुकामं तं महा वैतरणीं नदीम् ।
शत योजन विस्तीर्णां पूयशोणित संकुलाम् ॥

पार उतार देते हो और उसके प्रबन्ध के व्यय के लिये कुछ धन की कांक्षा भी नहीं करते केवल एक गौ [छोटी–बड़ी, मोटी–पतली काली–पीली, धौली–नीली, चाहें जैसी थोड़ा बहुत दूध देनेवाली हो] लेते हो, धन्य हो। महाराज! आप बड़े संतोषी हो, जभी तो ५ पैसे की गाय लेकर प्रसन्न हो जाते हो। हैं, हैं, अरेरेरेरेरे सुनों तो सही! महाराज! मैं तो भूल गया, जो १+४=५ पैसे की गाय का नाम लिया। अरे! आप तो १ पाई लेकर ही प्रसन्न होते हुए निम्न लिखित आशिष देदेते हो ॥

आशिषा–अरी माई! एक पाई दे! तेरे बेटा होय गो। अरे भैया! अरे राजा! एक पाई देजा, तेरो हुकम बढ़ैगो, सदा कलम रोशन

रहैगी, तू रानी रहैगी, परमेश्वर तोय वेटा देयगो। महाराज! आप वड़े प्रतापी हो। तभी तो श्रीमत्भागवत स्कन्ध ४ अध्याय २१ श्लोक ३८ में लिखा है कि ईश्वर ने भी आप ब्राह्मणोंकी चरण सेवा से ही लक्ष्मी, यश, जगत में पवित्रता और महत्वता (श्रेष्ठों में श्रेष्ठता) प्राप्त की थी। यथा—

ब्रह्मण्य देवः पुरुषः पुरातनो, नित्यं हरिर्यच्चरणाभि वंदनात्।
अवाप लक्ष्मी मन पायिनी यशो, जगत्पवित्रं च महत्तमा ग्रणीः॥

अरे महाराजों के महाराज परमेश्वर के रूप ब्राह्मण देवताओ! बड़े शर्म्म की वात है कि जब परमात्माने आपको इतनी अधिक आजीविका और इतनी बड़ी प्रतिष्ठा दी हुई है तब भी आप अधमता को ग्रहण करते हो अर्थात् द्वार द्वार जन जन से रिरियाते=घिघियाते और चील के पंखोंकी तरह हाथ फैलाते हुए भीख मांगते फिरते हो बस आपकी इस गिरी हुई दशा [कुदशा = दुर्दशा] को देखकर ही अब अन्तको मुझे कहना पड़ता है। कि—

॥ दोहा ॥

करी कृपा जगदीश नें, तुमहिं बड़ाई दीन।
तज निज गौरव धर्म तुम, काहि अधमता लीन॥

॥ चोर के घर छछोरा ॥

अरे! यह लोग तो अपने सुन्दर स्वरूप को भूलकर और अपने गौरवको त्याग कर याचक बन जन जन से जाचते ही हैं। किन्तु कुछ एक थोड़े से ऐसे मनुष्य हैं जो छत्तीसो रोजगार करते हुए भी इन दान ग्राहियों से चुपके चुपके दान लेलेतेहैं। बस इसी लिये मैं साहस पुर्वक कहता हूं कि—

नारी आगे नारी नाचे। जाचक आगे जाचक जाचे॥
सूरज आगे जोयो दियो। यां शखशा को फूटो हियो॥

॥ प्रोहिताई—कर्म—निन्दा ॥

श्रीमान् गुपालजी कविराय रचित—

॥ सोरठा ॥

प्रोहित हूजै नाहिं—जो यजमान कुबेर सो ।
निन्द्य कहैं सब याहि—गति न कहै परलोक में ॥

॥ कवित्त ॥

रहनो पर दुःख सुख यजमान के में, दान के वखत लोग देत बुरवाई को । जा को धान खाय ताके पापन के भोगी होय, वेद और पुराण याते निन्द्य कहैं ताईको ॥ कहत गुपाल कवि भले बुरे कर्मन में, सबसों पहिले प्रास देनी परै जाइको । जाय के निताई यों कमाइये किताई क्यों न, ठहरत काई के न पैसा प्रोहताई को ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

दान दर्पण तृतीय भाग समाप्तम्

॥ * ॥ विविध—समाचार ॥ * ॥

१—स्काटलेण्ड में ४१ गांव हैं वहां एकभी भिखमङ्गा नहीं और भारत के प्रत्येक ग्राममें सैंकड़ों भिखारी रहतेहैं देखो सत्यवादी—हरिद्वार भाग १ अङ्क १२ पेज २ कालम ४ लाइन ८७ ॥

२—जब तक कोई ऐसी विधिन होगी कि १८ वर्ष से कम अवस्था वाला बालक भिक्षा न मांगने पावे और न उसको कोई साधू चेला बनाने पावे तब तक हरामखोर भिखारियों की संख्या भारत वर्ष में न घटेगी । देखो आर्य्यमित्र आगरा वर्ष ६ अंक १९ पेज २ का. १ ला. ५९ ॥

३—इङ्गलेण्ड के वेकार लोग अपने खाने पीने के लिये आपस में मिलकर जलसे किया करते हैं का.२ ला०२७ किन्तु भारत के वे रोजगारी लोग भिखारी वन जातेहैं । देखो हितकारी अमृतसर जि. ३ नं. ४४ पे. १४

४—भारत वर्ष में ७१ लाख गौ प्रति वर्ष मारी जाती हैं देखो सद्धर्म्म प्रचारक—जालंधर जिल्द १४ नं० २४—२९ पे १३ का० १ ला० २३

दामोदर—प्रशाद—शर्म्मा—

दान—त्यागी—

॥ * ॥ ओ३म्—खम्ब्रह्म ॥ * ॥

॥ * ॥ उपसंहार ॥ * ॥

हा ! *भारत के बल, वीर्य्य, साहस, उत्साह, ध्यान, धारणा, योग, ****समाधि आदि सभी का नाश करने और कायर, कपट, कापुरुष बनाने वाली एक मात्र महान हानि कारक "भिक्षा" तूही है ॥ १ ॥

हा ! पापनी, कलुषित कलेवर धारणी, मान मर्य्यादा नाशनी, कायरता कपट प्रकाशनी, अधमाधम भिक्षा ! तू ने बड़े बड़े वीर पुरुष, नीति विशारद, बुधजनों को अपयश, अपमान, अपकीर्त्ति की अयोग्य उपधियों से अनादर पात्र बना दिया ॥ १ ॥

हे ! दरीद्र क्लेश वेष वर्णीय भिक्षा ! जिस दिन से तू भारत सन्तान की पवित्र रसना पर आन विराजमान हुई, उसी दिन से तू ने पुरुषोचित, पुरुषार्थ पूर्ण आर्य्य सन्तान को कदर्थ्य, कपूत बना कर, कुटिल कुचाली की निराली चाल चलाकर "भिक्षां देहि" की दरिद्र कन्था से आच्छादित कर दिया ॥ २ ॥

हे ! भिक्षा ! तू ने भयानक बिभीषिका के भण्डारको खोलकर तनके वस्त्र उतराकर शिर पर जटा जूट का जटिल जूड़ा बन्धवा कर गली गली में भिक्षुक बनाकर "भिक्षां देहि," की ध्वनि से इस पवित्र भूमि को अपवित्र बनाकर दरिद्रता का दुर्ग स्थापन कर दिया ॥ ४ ॥

हे ! राक्षसी रूप धारणी अधम भिक्षा ! तू नाना रूप रचकर अपने मोहिनी रूप से न केवल हम सरीखे साधारण जन की वरन् हिन्दू धर्म पुराणों की प्रातः स्मरणीय लक्ना बनकर बालि के द्वार पर अपने कलुषित पापमय वाक्जाल फैलाकर रसातल में पहुंचाने वाली बनी ५।

हा ! चाण्डालनी भिक्षे ! तू ने श्री कृष्णचन्द्र से योगीश्वर, वीर, शिरोमणि, नीति विशारद, प्रसिद्ध, पुरुषोत्तम को दुष्ट, अन्यायी कौरवों के द्वार पर कराञ्जली पूर्वक प्रणाम करवाया ॥ ६ ॥

हे ! निकृष्टान्न परिपोषित भिक्षा ! तू ने अपने मोहमी मंत्र से इतना मुग्ध किया कि ९१ लाख आर्य्य सन्तान तेरे क्रीतदास बनकर नाना प्रकार के कपट मय कौशल दिखा कर सद् गृहस्थों के कष्ट से उपार्जित ग्रास का ग्रहण करते हैं ॥ ७ ॥

हे ! दुर्दैव रूपी भिक्षा ! तू ने बड़े बड़े ऋषि कुमारों, मुनि कुमारों और राज कुमारों को उन के माता पिता से जुदा कर, मूड मुंड़ा कर; पाधा, पुरोहित, पण्डा, पुजारी, और आचारी आदि के रूप में श्वान के समान पर ग्रास के राहु बनाकर भी शान्ति न ली ॥ ८ ॥

हा ! भिक्षा ! तेरे ही प्रताप से जहां पुरुषार्थ के पवित्र मंत्र से दीक्षित होकर "कर तर कर न करें" की ध्वनि सुनाई देती थी वहां के ऋषि सन्तान अपने पूर्वजों के नाम विस्मरणकर कुपुत्र गंगा और जमना के पुत्र बन कर वर्ण व्यवस्था की संकीर्ण संकलन में बद्ध होकर अपने माता पिता को गालि प्रदान करने में लज्जित नहीं होते ॥ ९ ॥

बिना परिश्रम किये दूसरे के उपार्जित द्रव्य को दांत काढ़, मुख बनाय हीनाकृति होय, हाहा खाय, खवासपना दिखाय, उदर दरीची को लखाय और हाय हाय मचाय मांगना कितना निर्लज्ज पना है, कितनी धृष्टता और नीचपने का काम है । पुरुषार्थ करने की स्वाभाविक शक्ति परमात्मा ने आत्मा को दी है जिसके द्वारा अरुण शिखा से पक्षी गण वाराहं आदि से पशुगण और पिपीलिकाद से कीटगण निज हस्तपादादि परिचालन पूर्वक आहार अन्वेषण कर शरीर पालन करते हैं। किन्तु याचक गण शूकरादि पशु गणों से भी अधमतर बनकर परमल भक्षण पूर्वक मिथ्या प्रशंसा गायन कर तोषामोद के द्वारा उदर भरते हैं ॥

ज्ञान और कर्म्म इन्द्रिय पाकर कृतघ्नता के भण्डार बनना और स्वान वृत्ति से स्वपच, किरात, कोल, भील से भी अधिक निकम्मे होकर दरिद्र भारत को दरिद्रतर बनाना कुलंगार, कुपूत, आलसी और कायर पुरुषों का काम है। हस्त, पदादि रहित, अन्ध, पङ्गु और कुष्ठादि से गलित शरीर वालों के प्रति जिन गृहस्थों को पालन करने का उपदेश भगवान ने दीया है उनके मुख से ग्रास को छीन कर खाने वाले भिक्षा ग्राही कापुरुषों से भारतवर्ष को भगवान्-मुक्त करें ॥

बिना परिश्रम के द्रव्य भोगी याचकगणों के ही द्वारा भारत के मद्यालय, वेश्यालय और बन्धुआलय परिपूर्ण हो रहे हैं उन्हीं के कारण प्रमत्तता प्रलापता और कठिन रोगों का केन्द्र भारत बन रहा है। सब से प्रथम याचकता परिश्रम द्वारा द्रव्य उपार्जन करने से हटाती है। पुनः याचकगण पुरुषार्थ हीन होने से ही पर द्रव्य को चोरी आदि उपायों से प्राप्त कर जैसे बन्दी बनते हैं वैसे ही विशेष छल कपट द्वारा अधिक धन दान में पाने से वाम मार्गी बन कर मद्य, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन के कीट बनकर लोक परलोक नसाते हैं ॥ ताड़केश्वर के महन्त, काशी के कृष्णानन्द और बम्बे के गोसाईं, जिनका व्यायबिल केश जगत प्रसिद्ध है, मुफ्त खोरी के भाग्य अमावास्या के समान कृष्ण मुख प्रसिद्ध हैं। जुआरी, व्यभिचारी, अनाचारी और दुराचारी बन कर अपने वंश को ही कलुषित नहीं करते वरन भारत को कंटक रूप होकर कलंकित कर रहे हैं ॥

५२ लाख भिखमंगे और ४८ लाख पाधा, पुरोहित, पंड्या, पुजारी और पाखण्डी वर्ष में ६० करोड़ रुपये खा कर खासे मुस्टण्डे, हट्टे कट्टे, बनकर; जो प्रायः दारा रहित हैं वह सब परदारा भोगी बन कर, भ्रूण हत्या के द्योतक बन कर, अपने पाप पुञ्ज के दावानल से न केवल अपने ही को वर्ण दाता को भी दग्ध करते हैं। जिस

दान को लेकर दान ग्रहीता अपने पुत्र परिवार को भिक्षुक बना देता है उसी दान को देकर दाता एक दिन दरिद्र की चादर ओढ़ कर निर्लज्ज भाव से अपने कुटुम्ब को भिक्षांदेहि की शिक्षा दे जाता है ॥

हे प्रिय ग्रहस्थ गण ! आप यदि दान ग्रहीता " भिक्षांदेहि " वाली संप्रदाय में मुक्त हैं तो आप ध्यान पूर्वक विचार करलें कि आप अपना लोक परलोक दोनों नसा रहे हैं। कारण " भिक्षांदेहि ,, के स्मरण करते ही जिस प्रकार वैराग्य से काम भाग जाता है उसी प्रकार सत्यता, आत्म प्रतिष्ठा, श्री और धर्म्म ये सब दूर भाग जाते हैं। आप कभी सत्य बात अपने मुख से कह नहीं सक्ते हैं सत्य भाषण से आप दूसरे को प्रसन्न नहीं कर सक्ते हैं और जहां आपने सत्य को गोपनकर मिथ्याप्रशंसा का गीतगाया वहीं ईश्वरकी आज्ञानुसारआप आत्म हिंसक=आत्म हत्यारे बनगये; आप जानते हैं आत्म हिंसा करनेहीसे आप उत्तम जन्म से अधम, राक्षस, पिशाच और असुर बन जावेंगे। स्वान वृत्ति धारण करने ही से अपनी दरिद्रता = निर्धनता का आलाप करनापड़ता है। आप न अच्छे वस्त्र पहन सक्ते हैं, न उत्तम भोजन कर सक्ते हैं। और यदि करते हैं तो आप उसी प्रकार छिपाने की कोशिश करते हैं जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पर पुरुष के प्रेम को वेश्यों के समान। आप मनकी बात छिपाकर दाताके मुख चन्द्र को देखकर उसे रिझाने की चेष्टा में इतना लीन होजाते हो कि उसकी मलीन दूषित वृत्तियों को प्रसन्न करने के लिये दो पैर आगे रखकर करीमन वज़ीरन और नसीबन आदि के दरवाजों को भी जा खटखटाते हो। भगवान ने तुमको पुरुषार्थ करनेकी शिक्षा दी है परन्तु तुम अपनी कायरता के वसवर्ती होकर कापुरुष के समान उद्यम को तिलांजली देकर निकम्मे बने हो ॥

प्रिय भिक्षाग्राही बन्धुगण ! तुम कौन हो ? क्या परधनहारी, पाप पुञ्ज पसारी, पापयशी वेश्या वृतिकारी वाराङ्गना हो ? क्या पर द्रव्य के द्रष्टा वायस रूपधारी जयन्त वंशोत्भव भगवान काग भुसण्ड हो ? क्या परमल गोपन करनेवाले मिथ्या प्रशंसा को गानकर सूत वंसावतन्स मांगध बन्दी चारण हो ? क्या मान मर्य्यादा को नाश कर पर यश गानकर कपोल कल्पित कल्प वृक्षकी कल्पना की जल्पनासे जाहिरात करनेवाले भण्ड हो ? क्या आत्मा के विरुद्ध धर्म्म के विपरीति मद्रता से भिन्न भवसागर में डुबानेवाले भयावह भगवान यमराज के पर काज साधक सयाने चापलूस हो ?

तुम चाहे जो हो, हमें आपसे इतनाही कहना है कि आप अब अपने हृदय के नेत्र खोलकर एक बार देखो । पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि सभी जीव जन्तु परिश्रम कर कमाई करतेहैं । किन्तु तुम वृहन्नटा के समान घर और घाट दोनोंसे पृथक् हुए जान पड़ते हो । यदि तुम अन्ध, पंग, और गलित अंग होते तो दाता दयालु की टेरसे उदर दरीची भरते हानि न होती ॥

हे गृहस्थी लोगों ! यदि तुम किंचित विचार करो और देखो तो तुमको यह ज्ञात होजावे कि तुमारा धन स्वार्थी स्वकार्य्य निरत नितान्त निर्बुद्धि जन मिथ्या प्रशंसा कर अथवा वृथा वाक्जाल के द्वारा स्वउपार्जित धन समूह अपहरण कर स्वयम् विषयानन्द करते हैं । और तुम्हें मूर्ख बोधकर तुमारे ऊपर पाप के पहाड़ को लाद देतेहैं ॥

तुम्हारा काम अतिथि सत्कार करने का अनाथ पालने का और चिकित्सालय, विद्यालय एवं अनाथालय स्थापन करने का है । जिसके द्वारा देशका मुख उज्वल हो, परोपकार हो और स्वधर्म्म की रक्षा हो । उन कर्मों को आप न कर इन उदण्ड, सण्ड, मुसण्ड, मुचण्ड, मूर्ख, मनोमालिन्य, दुर्गुण, दुराचारी, परधन-परदार हारी, भिक्षावृत्ति धारी और अनाड़ियों को देकर अपने हाथ से स्वपग में आघात करते हो ॥

क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है ? कि तुम्हारे दिये हुए द्रव्य को यह माया, धानक पंथी, छपहड़, जटाधारी, गोसाईं, बैरागी, आचारी, मन्दिरोंके पुजारी, पंचांग प्रदर्शक, पाखण्डी, पण्डेगण लेकर क्या करते हैं । उन्हें तुम्हारे प्रदत्त द्रव्य से इतनी ममता नहीं है कि जितनी तुमको है क्योंकि उन्हें तो दो चार चिकनी चुपड़ी सुनाकर मिला है। बस वह लोग तुमारे धन से यज्ञ नहीं करते हैं वरंच मद्यपान करते हैं। इन्द्रियों के वशवर्ती होकर पर दार और वाराङ्गनादि के वसन भूषण और उनके गो मांसादि भक्षण में व्यय करते हैं । क्या तुम समाचार पत्रों में नहीं पढ़ते रहते हो ? कि अमुक आचार्य्य की यह दशा हुई है । बस भाई ! इस प्रकार से अपने धनको स्वाहा करना मानो राखमें सुगंधमय द्रव्यको डालनाहै॥

अगर आप लोग इन बिना परिश्रम करनेवाले भिक्षाग्राहियों को दान न देवें तो जो एक करोड़ की संख्या में मुफ्त खोरे भारत में वास करते हैं और वर्ष में ६० करोड़ रुपये खाजाते हैं वह बच रहें और मंगतागण अपने अधम पापी पेट की ज्वाला मिटाने के लिये जो कुछ भी करें । मानो ६० करोड़ ही उपार्जन करेंगे तो भी १ अर्ध २० करोड़ का लाभ होगा । यदि हे सद् ग्रहस्थ लोगो ! तुमारा ६० करोड़ धन बच रहै तो उसके सूद से तुमको २ करोड़ ७० लाख रुपये वर्षमें प्राप्त हों, जिस से तुम प्रति वर्ष २० कॉलेज बनाकर एक लाख विद्यार्थियों को भोजन और एक लक्ष अनाथों को अन्न देकर अपने दोनों लोक परलोक सुधार सकते हो ॥

भारतवर्ष—के मन्दिरों, देवालयों और दातव्यालयों में न्यून से न्यून १५करोड़ रुपये मासिक का दातव्य है । वही यदि अच्छे प्रकार व्यय हो तो १० लाख अनाथ अन्न वस्त्र पाकर उदर पालन करते हुए विद्याध्ययन कर सकें और बड़े बड़े कारखाने खुल सकें—और सद् गृहस्थों का द्रव्य अन्य महोपकारी कार्य्यों में व्यय हो । नित्यसः दुस्काल अकाल की भयानक विभीषिका जो भारत के द्वार पर दण्डायमान हो कर दुखान्त दर्शन कराती है उसका मुख्य कारण यही है कि पांच करोड़ के उपार्जित द्रव्य को एक करोड़ स्वानवृत्ति धारी, कलुषित कपटाचारी,

कपट कुठार प्रहारी, परधनहारी, कुटनी कुटिल रूपवाले, प्रमादी मद वाले जिस प्रकार कुटनी नायका की भूरि २ प्रशंसागान कर बिना परिश्रम के गुलछर्रे उड़ाती है उसी प्रकार ये यह कूट कुटिल रूप वाले "आप दाता कर्ण हैं,,—" कल्प वृक्ष कुबेर हैं ,, की चांपलूसी कर अपने पापी पेट की पालना करते हैं ॥

हे प्रिय गृहस्थो ! आप ही के कल्याण के हेतु आप ही की मन्द बुद्धि को ज्ञान प्रकाश देने के लिये हमें इतना ही मात्र कहना है कि आप की मोह निद्रा किसी प्रकार से छूट जावे । और आप सत् मार्ग के पथिक बन कर सुख भोग करें ॥

इसी प्रकार हे भिक्षा ग्राही गण ! वारी, वायस, स्वान की चाल को छोड़कर " भिक्षां देहि ,, की प्रकाण्ड पोलिसी को परित्याग कर पुरुषत्व की पूर्ति कीजिये । दाता दयालु धर्म्म के अवतार की बात कह कर मांगना—दाता तुमारा भला हो इस प्रकार की घोषना करके अर्थ लाभ करना—पञ्चांग दिखाकर छल कपट पूर्वक हाथ देखकर फल-फल कहना—गद्दी पर बैठ कर पैर पुजवाना—या जटा रखाकर पर द्रव्य हरण करना एवं यात्री के साथ छायागामी बनकर साथ फिरना--पीर बवर्ची, भिश्ती, खर बनना और टका रखाकर धन हरण करना त्याग दीजिये । व्यवसाय और वाणिज्य करना लीजिये । और देश धर्म की रक्षा कीजिये । मतकुण जिस प्रकार असावधानता में रक्त पान कर स्व रक्त वृद्धि करता है उस प्रकार की वृत्ति परधन हरणार्थ कला कौशल पूर्वक स्व उदर दरीची का भरना प्रतिज्ञा पूर्वक परित्याग कीजिये ॥

संसार में मांगने—याचना करने के बराबर और कोई गर्हित पाप कर्म नहीं है जिसके विचार मात्र से लोक मरियादा आत्मगौरव मान प्रतिष्ठा और लोक प्रियता का अभाव हो जाता है क्षुद्रता संकीर्णता लाघवता और निर्लज्जता आकर विराजमान होती हैं मांगना इतना तुच्छ है, इतना हलकापन है कि मांगने वाले के देखने से घृणा उत्पन्न होती है ॥ बी. एन. शर्मा

और—भी

हा ! मान भंग कराने वाली भिक्षे ! तू ने ही चतुर्वेदियों (मथुरा के चौबों) को प्रत्यकसे कुवाच्य सुनने [सहने] योग्यबनादिया॥

अरे ! अधमाधम भिक्षे ! देख. एक दिन वह था जब कि तू "इनकी जिव्हा पर आरूढ़ नहीं हुई थी" सारा भूमण्डल इनका मान सन्मान किया करताथा, प्रसन्नता पूर्वक इनके पगों को पूजता था, इनकी आज्ञाओं को मानताथा, इनके समान ज्ञानी, ध्यानी, जापक, पाठक, द्रव्य त्यागी, काम--क्रोध--लोभ--मोह--मद--ईर्षा के विजयी, दूरदर्शी, भजनानन्दी, ईश्वरभक्त, चतुर्वेदी=चारो वेद के जानने और माननेवाले, श्रेष्ठ सारे संसार में किसी और को नहीं समझता था ॥

सुन ! श्री वाराह जी महाराजने कहा था कि माथुरों=चौबोंके तुल्य दूसरा ब्राह्मण नहीं—न माथुर समो द्विजः ॥ १ ॥

श्री शत्रुहन जी महाराज इनको बहुत बड़ा समझते थे, यहां तक कि एक दिन यज्ञ में मुनियों की संख्या पूरी न थी इस लिये आपने मुनियों की गणना पूर्ण करने के कारण कुछ माथुरों को मिला लिया और कहा कि एक २ चौबे के पूजने का महात्म्य एक २ सहस्र मुनियों के बराबर है ॥२॥

श्री कृष्णचन्द्र जी ने इनको यज्ञ करते हुए देखकर प्रसन्नता प्राप्त की थी और यज्ञ का प्रसाद=भात मांगा था ॥ ३ ॥

वेद मतावलम्बी दक्षिणी ब्राह्मणों ने इनको वेद मूर्ति कहाथा ॥ ४ ॥

कहां तक लिख सुनाऊं इनकी प्रभुता के सहस्रों वरन लक्षों प्रमाण हैं ॥

रे ! नीच, निर्लज्ज, पापनी, महापापनी भिक्षे ! परन्तु जब से तू इन की जीभ पर आन विराजी=आसवार हुई तबही से इनका सारा मान, सम्मान, आदर, सत्कार और प्रभुत्व घटता चला गया और दशा बिगड़ती गई और बिगड़ते २ यहां तक बिगड़ी कि लोगों को इन के लिये निम्न लिखित वाक्य लिखने पड़े—

श्री चौबे गणेशीलाल जी चौधरी मुदर्रिस ग्राम बलदेव ने लिखा है कि हाय ! हा ! सोच ! आज यह दिन आगया कि चतुर्वेदियों को अपने गोत्र, शाखा, प्रवर, सूत्र, कुलदेव आदि भी अच्छी तरह से याद नहीं हैं इसके सिवाय शुद्ध शुद्ध संकल्प और अपनी पूजा पद्धति भी नहीं आती और जो किसी२ को आती भी है तो ऐसी अगड़म बगड़म याद है जिसको सुन करपढ़ा लिखा यजमान कहता है " बस महाराज बस देख लिये " इससे यही सिद्धि होता है कि निरे भैंस के लाऊ आस पास के बृजवासी हर जोता कठ मिसुरार्थों से कुछही बढ़कर हैं ॥ देखो " चतुर्वेदी उन्नति का पहला चुटकला ,, नाम पुस्तक पन्ना १—२ ॥

श्री मान् राय बहादुर लाला बैजनाथ जी. बी. ए. एफ. ए. यू. जज अदालत खफीफा इलाहाबाद लिखते हैं कि चौबे कहते हैं कि औरों की विद्या और चौबों की महाविद्या जिसका अर्थ यह है कि भांग पीना और लड्डू खाना और कुश्ती लड़ना और एक आदि बार किसी भूले भटके यात्री का माल लूटना और उसको कभी कभी मार भी डालना देखो " धर्म विचार ,, पृष्ठ ७९ पंक्ति ९ से १० तक ॥

श्री मान् राय ज्वालाप्रसाद जी एम.ए.मथुरा प्रान्तके डिप्टीकलेक्टर साहब ने श्री मान् महात्मा मुनशीराम जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी—हरिद्वार से कहा था कि—जितना रुपया ये कुत्ते (यह नाम आपने चौबों को देने की कृपा कीथी) यहां खा जाते हैं उसने से एक उत्तम श्रेणी का कालिज चल सक्ता है ॥ देखो सद्धर्म प्रचारक सप्ताहिकपत्र जालन्धर शहर भाग १९ संख्या ३७पृष्ठि१८ कालम् १ लाइन ६—९ तारीख २० दिसम्बर सन् १९०७

भारत मित्र कलकत्ता खण्ड १६ संख्या ४४ पेज ९ का. ९ तारीख १४—११—०१ में लिखा है कि केवल दान के पीछे जो चौबे महाराज अपना जीवन व्यर्थ खो रहे हैं यह यदि समझ जांय तो इससे अच्छी बात और क्या है ॥

आर्य्यावर्त्त रांची खण्ड १७ अंक ११ पेज ३ कालम ४—५ तारीख़ १४—११—०१ में लिखा है कि मथुरा के चौबों ने विद्या को त्याग कर निरक्षर भट्टाचार्य्य रहते हुएं केवल भीख पर ही अपना निर्वाह सोचा है क्याही उत्तम हो यदि चौबों को साथ साथ विद्याभ्यास कराते हुए उनको वास्तविक चौबे अर्थात् चतुर्वेदी बनाया जावे ॥

फरहैला निवासी रासधारी वैद्य सुन्दरलाल जी कृत चौबेलीला और वृन्दावन वासी श्रीमान्यवर पण्डित राधाचरण जी गोस्वामी रचित भंग तरंग नाम पुस्तकों को देखिये कि उनमें इनके (चौबों के) चरित्रों के कैसे सच्चे चित्र खींचे गये हैं ॥ हर एक मनुष्य इनको दुतकार जाता है जबकि यह लोग उसके इके बग्घी के साथ दौड़ते हुए चिल्लाकर उसके कान खाते हैं ॥

हाय ! श्री अत्रि जी महाराज ने तो यहां तक आज्ञा दे दी कि माथुर (चौबे) १, मगधदेश का वासी २, कर्पटदेश का वासी ३, कीट ४, कानदेश में जो पैदा हुआहो ५—ये पांच ब्राह्मण चाहें बृहस्पति के समान हों तोभी न पूजे जावें । यथा—

माथुरो मागधश्चैव कार्पटः कीट कानकौ ।
पंच विप्रा न पूज्यंते बृहस्पति समायदि ॥

अत्रि स्मृति अध्याय १ श्लोक १८६

रे ! थर थर कंपाने वाली चांडाली भिक्षे ! तूने ही मथुरा में रहने वाले कुछ कुलीन चतुर्वेदियों को यमुना पुत्रों से भयभीत होना सिखाया और एटा, इटावा, मैनपुरी और भदावरादि स्थानों के कुलीनों से तिरस्कार करवाया ॥

अरे ! सकल गुण नाशक भिक्षे ! तूने बड़े बड़े देवतों को नीचा दिखाया इसलिये अब तू भिक्षा ! यहां से कृष्ण मुख करजा ! चल जा ! जा ! जा !! जा !!!

* हस्ताक्षर दामोदरप्रसाद--शर्म्मा--दान--घ.गी *

* ओ३म्—खम्ब्रह्म *

॥ दान दर्पण का सूचीपत्र ॥

॥ काशी-माहात्म्य ॥

देखो तुमरी काशी । लोगो देखो तुमरी काशी ॥ जहां विराजैं विश्वनाथ । विश्वेश्वर जी अविनाशी ॥ १ ॥ आधी काशी भाट भंडेरिया । ब्राह्मण और सन्यासी ॥ आधी काशी रण्डी मुण्डी । रांड खानगी खासी ॥ २ ॥ लोग निकम्मे भङ्गी गञ्जड़ । लुच्चे बे विश्वासी ॥ महा आलसी झूंठे शुहदे । बे फिकरे बदमाशी ॥ ३ ॥ आप काम कुछ कभी करैं नहिं । कोरे रहैं उपासी ॥ और करैं तै हसैं बनावैं । उसको सत्यानाशी ॥ ४ ॥ अमीर सब झूंठे और निन्दक । करैं घात विश्वासी ॥ सिफारशी डरपुकने सिट्टू । बोलैं बात अकासी ॥ ५ ॥ मैली गली भरी कतवारन । सड़ी चमारिन पासी ॥ नीचे नल से बदबू उबलै । मानों नरक चौरासी ॥ ६ ॥ कुत्ते भूंकत काटन दौड़ैं । सड़क सांड़ सो वासी ॥ दौड़ैं बन्दर बने मुछन्दर । कूदैं चढ़ैं अगासी ७ घाट जाओ तो गंगा पुत्तर । नोचैं दे गल फांसी ॥ करैं घाटिया बस्तर मोचन । दे दे के सब झांसी ॥ ८ ॥ राह चलत भिखमंगे नोचैं । बात करैं दातासी ॥ मन्दिर बीच भंड़ेरिया नोचैं । करैं धरम की गांसी ॥ ९ ॥ सौदा लेत दलालों नोचैं । दे कर लासा लासी ॥ माल लिये पर दुकानदार नोचैं कपड़ा दे दे रासी ॥ १० ॥ चोरी भये पर पूलिस नोचैं । हाथ गले बिच डासी ॥ गये कचहरी अमला नोचैं । मोचि बनावैं घासी ॥ ११ ॥ फिरैं उचक्का दे दे धक्का । लूटैं माल मवासी ॥ कैद भये की लाज तनिक नहिं । बे शरमी नंगासी ॥ १२ ॥ घर की जोरू लड़के भूखे । बने दास और दासी ॥ दाल की मण्डी रण्डी पूजैं । मानो इनकी मासी ॥ १३ ॥ करि व्यवहार साख बांधैं सब । पूरी दौलत दासी ॥ घालि रुपैया काढ़ि दिवाला । माल डेकारैं ठांसी ॥ १४ ॥ काम कथा अमृतसी पीवैं । समुझैं ताहि बिलासी ॥ राम नाम मुंह से नहि निकलै । सुनतहि आवै खांसी ॥ १५ ॥
देखो तुमरी काशी । भैया देखो तुमरी काशी ॥

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका-बनारस अगस्त सन् १८९१ ई०

दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी
कृष्णपुरी-निवासी

॥ ओ३म-खम्ब्रह्म ॥

॥ अंतिम—सविनय—निवेदन ॥

सुनलो ! मम प्यारे वचन हमारे आखिर तुमको चलन परे ।
बहु दिन खाये भीखके टुकड़े मांगन में बहु चित्त धरे ॥
बहु मान नमाये मन न दबाये कालके डेरे आन परे ।
अबहूं तुम जागौ भीक्षा त्यागौ भूलि परे सो भूलि परे ॥

॥ पुस्तक—मूल्य—सूचीपत्र ॥

१—चार वेद के जानने वाले=चतुर्वेदियों से — ४) रुपये
२—तीन वेद के जानने वाले=त्रिवेदियों से — ३) रुपये
३—दो वेद के जानने वाले=द्विवेदियों से — २) रुपये
४—एक वेद के जानने वाले=एक वेदियों से — १) रुपया
५—एक भी वेद के न जानने वाले=लवेदियों को — मुफ्त
६—चोरी चोरा भीख लैन वाले=रोजगारी भिखारियों को बिनदाम
७—अपने मुख्य इष्ट मित्रों को — भेट-नजर
८—अपने सम्बन्धियों (रिश्तेदारों) को — सौगात
९—सर्व साधारण को — ||=) आने
१०—विद्यानुरागी दीनों=गरीबों को निश्चय होने पर |||)आने

नोट—यहां पर मेरा तात्पर्य किसी विशेष (खास) जाति (फ़िरक़ह) जैसे चौबे, तिवारी, दुबे से नहीं है । यहां तो मनुष्य मात्र से प्रयोजन है जो वेदों को जानता या न जानता हो ॥

पुस्तक मिलने का पता—ठिकाना—

☞ रविदत्त-शर्म्मा
पास = दामोदर-प्रसाद-शर्म्मा-दान-त्यागी
सीतला—पाइसा
मथुरा ।